योगदर्शन तथा बौद्ध दर्शन में वर्णित ध्यान एवं समाधि का तुलनात्मक अध्ययन

एम्. फिल्. उपाधि हेतु

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक

प्रो० गोपाल लाल मीना

शोधार्थी

प्रभु कुमार

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली, 110067

RECOMMENDATION FORM FOR EVALUATION BY THE EXAMINER/S

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation/thesis titled ...योगदर्शन तथा बौद्ध दर्शन में वर्णित ध्यान एवं समाधि का तुलनात्मक अध्ययन... ....submitted by Mr/Ms...Prabhu Kumar.................in partial fulfillment of the requirements for award of degree of M.Phil/M.Tech/Ph.D of Jawaharlal Nehru University, New Delhi, has not been previously submitted in part or in full for any other degree of this university or any other university/institution.

We recommend this thesis/dissertation be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of M.Phil/M.Tech./Ph.D.

Signature of Supervisor

Dr. Gopal Lal Mena
Associate Professor
Special Centre for Sanskrit Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

Date:

Signature of Dean/Chairperson

Date: 5/3/2021

Dean
School of Sanskrit And Indic Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

आत्मनिवेदन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिसके जीवन की शुरुआत समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार से होती है, जिसमें रहकर वह अनेक सामाजिक, व्यवहारिक, सैद्धान्तिक शिक्षाओं को ग्रहण करता है तथा एक सामाजिक प्राणी बनता है। इसलिए तो कहा गया है कि बालक शिक्षा का प्रथम पाठ माता के चुम्बन एवं पिता के दुलार से सीखता है। अत: सर्वप्रथम मैं अपने माता-पिता के चरणों को सादर प्रणाम करता हूँ, जिनके आशीर्वाद से मैं पढ़ सका तथा जिन्होनें न केवल मुझें शिक्षा के प्रति अग्रसर किया बल्कि सत्य के मार्ग पर चलने के लिए सदैव प्रेरित किया। मैं अपने अग्रज अंकुर भैया को प्रणाम करता हूँ, जिन्होनें मेरें इलाहाबाद विश्वविद्यालय से लेकर जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय तक के अध्ययन के सफर में न केवल सदैव मार्गदर्शन किया अपितु आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक सम्बल प्रदान कर मुझे सदा आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की। आशा है भैयाजी का प्रेम आगे भी बना रहेगा। मैं अपने अनुज बालमीत, अनिल, नितिन, शिवा एवं बहनों में रेखा, नीलू, सेखा, और अंशु का भी धन्यवाद देता हूँ, जिनकी प्रेमभरी नजरों ने मुझे सदैव आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा दी। मैं परिवार के अन्य सदस्यों का भी हृदय से आभारी हूँ जिनका स्नेह, प्रेम, एवं करुणा से भरा व्यवहार मेरे चरित्र निर्माण का साक्षी रहा ।

मैं परम श्रद्धेय पूज्य गुरुवर्य प्रो० गोपाल लाल मीना सर को प्रणाम करते हुये उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके शोध-निर्देशन में मैनें न केवल उनसे शोध से सम्बन्धित गूढ़ विषयों को जाना अपितु उसका व्यवहारिक प्रयोग भी सीखा। सर के द्वारा पढ़ाये गये बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों से ही मुझे इस दर्शन में शोध करने की प्रेरणा मिली। मुझे आशा ही नही पूर्णविश्वास है कि मेरे प्रति ऐसे ही सर का प्रेम एवं सहयोग तथा शोध-निर्देशन बना रहेगा।

मैं अपने आप को सौभाग्यशाली समझता हूँ कि जे०एन०यू० में आकर मुझे भारतीय ज्ञान परम्परा के मूर्धन्य विद्वानों के ज्ञान का रसामृत पान करने का अवसर मिला। मुझे

अपने संस्थान के गुरुजनों प्रो० गोपाल लाल मीना सर से आयुर्वेद तथा बौद्ध दर्शन का, प्रो० रामनाथ झा सर से वेदान्त, योगदर्शन एवं नव्यन्याय दर्शन का , प्रो० चौडुरी उपेन्द्र राव सर से बौद्ध दर्शन एवं साहित्यशास्त्र का, प्रो०सन्तोष कुमार शुक्ल सर से मीमांसा दर्शन तथा धर्मशास्त्र का, प्रो० रजनीश कुमार मिश्र सर से रामायण, महाभारत एवं शैव दर्शन का, प्रो० हरिराम मिश्र सर से व्याकरण का, प्रो० सुधीर कुमार सर से वेदों, उपनिषदों, निरुक्त का, प्रो०सत्यमूर्ति सर से न्याय-वैशेषिक का, प्रो० टी.महेन्द्र सर से साहित्य का, प्रो० बृजेश कुमार पाण्डेय सर से अर्थशास्त्र का अध्ययन प्राप्त करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। मैं अपने इन समस्त गुरुजनों को बारम्बार प्रणाम करता हूँ तथा हृदय से आभार प्रकट करता हूँ, जिनके सहयोग से मैं यह शोध कार्य पूर्ण कर सका। मैं पूज्य गुरु महीधर द्विवेदी सर को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने मेरे हृदय में संस्कृत के प्रति रुचि जगाई और मुझे संस्कृत पढ़नें के लिए प्रेरित किया और समय समय पर मुझे मार्गदर्शन भी प्रदान किया अत: मै सर का हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

अपने शोधकार्य के दौरान मुझे मेरे सीनियर श्याम सर, भरत सर, शैलेश सर, प्रतीक सर, बलराम सर, शतरूद्र सर, विकाश सर, अनिल सर, ओमप्रकाश सर, सतीश सर, विजय कुमार सर, वशिष्ठ बहुगुणा सर, योगेन्द्र भरद्वाज सर एवं निधि त्रिपाठी मैम आदि का विशेष सहयोग एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ अत: इन सबके प्रति आभार प्रकट करता हूँ। मैं अपने सहपाठियों सत्येन्द्र कुमार चौधरी, राजभूषण मौर्य, अभिषेक गुप्ता, शिवपाल, रजनीश कुमार, हितेश मीना, हरिओम यादव, दिग्विजय सिंह, स्वप्नदेवशर्मा, एम.कृष्णा राव, मोहित, प्रवीण सेमवाल, विष्णु द्विवेदी, मोहित कुमार, अश्विनी कुमार, अभिषेक पाण्डेय, राधाकृष्ण यादव, आलोक झा, देवेन्द्र, हरिओम यादव, रजनीश, शुभम शर्मा, रोहिताश्व बैरवा, पवन उप्रेती, महेश, वीरेन्द्र, तेजप्रकाश शर्मा, रविकान्त सहित सभी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। तथा अनुजों में नरेन्द्र, विवेक, अर्जुन, अखिलेश कुशवाहा का विशेष आभारी हूँ। जिनके सहयोग से यह शोध कार्य पूर्ण हो सका मैं इन सबको विशेष धन्यवाद देता हूँ। और आगे भी प्रेम एवं सहयोग की आशा करता हूँ।

तदनन्तर हमारे संस्थान के कर्तव्यशील कर्मचारियों में मंजू मैम, शबनम मैम, विकास, अरूण जी को तथा संस्थान और केन्द्रीय पुस्तकालयों जे०एन०यू०, एल०बी०एस०, केन्द्रीय पुस्तकालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं इन पुस्ताकालयों के समस्त स्टाफ का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, जिनके सहयोग से मैं शोध से सम्बन्धित आकड़ो का संग्रह कर सका । इसके अतिरिक्त मैं उन समस्त प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कारकों को भी धन्यवाद देता जिन्होनें मेरे शोध कार्य में किसी न किसी प्रकार से अपना सहयोग प्रदान किया।

धन्यवाद्...

प्रभू कुमार

विषयानुक्रमणिका

आत्मनिवेदन्

विषयानुक्रमणिका

संकेताक्षर-सूची

भूमिका.. 1 - 10

प्रथम अध्याय - योगदर्शन में वर्णित साधना पद्धति............... 11 - 18

1.1 अष्टांगयोग... 12 - 15

1.2 क्रियायोग... 15 - 17

1.3 अभ्यास एवं वैराग्य... 17 – 18

द्वितीय अध्याय-योगदर्शन में वर्णित ध्यान एवं समाधि का स्वरूप 19-28

2.1 योगदर्शन में ध्यान का स्वरूप................................ 19 - 23

2.2 योगदर्शन में समाधि का स्वरूप............................... 23 - 28

2.2.1 समाधि के भेद.. 25 - 28

तृतीय अध्याय - बौद्ध दर्शन में वर्णित साधना पद्धति........... 29 - 43

3.1 आर्य चतुष्टय... 30 - 33

3.1.1 दुःख... 30 - 31

3.1.2 दु:ख समुदय.. 31 - 32

3.1.2.1 प्रतीत्यसमुत्पाद.. 31 - 32

3.1.3 दु:ख निरोध.. 32 - 33

3.1.4 दु:खनिरोधमार्ग... 33 - 41

3.1.4.1 अष्टांगिकमार्ग.. 34 - 39

3.1.4.2 बौद्धों के त्रिरत्न.. 39 - 41

3.2 बौद्ध साधना विषयक दृष्टिकोण.. 41 - 43

3.2.1 हीनयान अथवा स्थविरवाद बौद्ध साधना........... 41 - 42

3.2.2 महायान बौद्ध साधना.................................. 42 - 43

चतुर्थ अध्याय -बौद्ध दर्शन में वर्णित ध्यान एवं समाधि का स्वरूप 44-61

4.1 बौद्ध दर्शन में ध्यान का स्वरूप.. 44 - 45

4.1.1 बौद्ध दर्शन में ध्यान के भेद.................................. 45 - 50

4.1.2 विपश्यना.. 51 - 54

4.2 बौद्ध दर्शन में समाधि का स्वरूप.. 55 - 61

4.2.1 समाधि के भेद-प्रभेद.. 56 - 61

पंचम अध्याय – योगदर्शन तथा बौद्ध दर्शन में वर्णित ध्यान एवं समाधि की तुलनात्मक समीक्षा और समसामयिक प्रासंगिकता.............. 62 - 69

5.1 तुलनात्मक विवेचन.. 62 - 68

5.2 ध्यान एवं समाधि की समसामयिक प्रासंगिकता..................... 68 - 69

5.2.1 शारीरिक स्तर पर मनुष्य को ध्यान एवं समाधि से लाभ......... 68

5.2.2 मानसिक स्तर पर मनुष्य को ध्यान एवं समाधि से लाभ 69

5.2.3 आध्यात्मिक स्तर पर ध्यान एवं समाधि से लाभ.................. 69

उपसंहार.. 70 - 73

सन्दर्भ ग्रन्थसूची.. 74 - 77

संकेताक्षर-सूची

अं० नि०	अंगुत्तरनिकाय
अट्ठ०	अट्ठकथा
अभि०को०	अभिधर्मकोश
अभि०को०भा०	अभिधर्मकोशभाष्य
अट्ठसा०	अट्ठसालिनी
आयु०शा०	आयुर्वेदशास्त्र
अर्थ०वि०सू०	अर्थविनिश्चयसूत्र
अभि० सं०	अभिधम्मत्थसङ्गहो
गो०प०	गोरक्षपद्धति
घे०सं०	घेरण्डसंहिता
त०वै०	तत्त्ववैशारदी
दी०नि०	दीघनिकाय
ध०प०	धम्मपद
पा०यो०	पातञ्जलयोगसूत्र

पा०यो०भा०	पातञ्जलयोगसूत्रव्यासभाष्य
पृ०सं०	पृष्ठ संख्या
म०नि०	मज्झिमनिकाय
यो०सू०	योगसूत्र
यो०सू०भा०	योगसूत्रव्यासभाष्य
यो० वा०	योगवार्तिक
ल०वि०	ललितविस्तर
वि०सू०	विभंगसूत्र
वि०म०	विसुद्धिमग्ग
वि०पु०	विष्णुपुराण
सर्व०सं	सर्वदर्शनसंग्रह
सि०सि०प०	सिद्धसिद्धान्तपद्धति
स०नि०	संयुत्तनिकाय
स०नि०पा०	संयुत्तनिकायपालि

भूमिका

दर्शन शब्द दृश् धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर बनता है। जिसका अर्थ है "दृश्यतेऽनेनेति" अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए। भारतीय ज्ञानपरम्परा में दर्शन शब्द से तात्पर्य ऐसे ज्ञान से लिया जाता है जिसके माध्यम से तत्त्व का साक्षात्कार होता है। भारतीय दार्शनिक की संतुष्टि तत्त्व की बौद्धिक व्याख्यामात्र से नहीं होती, अपितु वह तत्त्वानुभूति भी चाहता है। ये अनुभूतियाँ दो तरह की भारतीय दर्शन में बतायी गई हैं **ऐन्द्रिय और अनैद्रिय।**

इनमें अनैद्रिय अनुभूति को आध्यात्मिक अनुभूति भी कहते हैं। इसी से तत्त्वज्ञान होता है। और भारतीय दर्शन का इस तत्त्वज्ञान में प्रगाढ़ विश्वास होने के कारण इसको तत्त्वदर्शन, मोक्षप्राप्ति परम ध्येय होने के कारण मोक्षदर्शन, और मोक्ष प्राप्ति आत्मा के द्वारा मानने के कारण आत्मविद्या भी कहा जाता है। कालक्रम की दृष्टि से भारतीय दर्शन का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं -

1 - वैदिक काल

2 - महाकाव्य काल

3 - सूत्र काल

4 - वर्तमान तथा समसामयिक काल

इनमें वैदिक काल के अंतर्गत चार वेद एवं उनके अङ्ग संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् जैसे महत्वपूर्ण दर्शनों का विकास होने से इसे भारतीय दर्शन का प्राचीनतम एवं आरंभिक अंग कहा जाता है। भारतीय दर्शन के महाकाव्य काल में रामायण, महाभारत जैसे धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रंथों का प्रणयन तथा बौद्ध एवं जैन धर्म-दर्शन का विकास हुआ। सूत्र काल में सूत्र साहित्य का निर्माण तथा न्याय-वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदांत जैसे महत्वपूर्ण दर्शनों का विकास हुआ। इस षड् दर्शन काल के पश्चात् भारतीय दर्शन की प्रगति धीमी दृष्टिगत होती है इसके दो मुख्य कारण कह सकते हैं-

१ - भारत का लम्बे समय तक मुस्लिमों और अंग्रेजों का गुलाम बने रहना।

२ - अद्वैत दर्शन की चरम परिणति।

चतुर्थ काल भारतीय दर्शन का राजा राममोहन राय से प्रारंभ होकर महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉक्टर राधाकृष्णन, के०सी० भट्टाचार्य, स्वामी विवेकानंद, स्वामी

दयानंद, श्री अरविंद ,डा. अम्बेड़कर एवं इकबाल के समय से अब तक चला आ रहा है। भारत के दार्शनिक विभाजन के बाद हम भारतीय दार्शनिक संप्रदायों की ओर ध्यान दें तो भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायवर्ग को दो भागों में बाँट सकते हैं -

१ - आस्तिक- वेद को मानने वाले।

२ - नास्तिक- वेद को न मानने वाले।

व्यावहारिक जीवन में आस्तिक एवं नास्तिक का अर्थ क्रमश: ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी किया गया है। किंतु भारतीय दार्शनिक विचारधारा में आस्तिक एवं नास्तिक शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं हुआ है यदि ऐसा होता तो सांख्य एवं मीमांसा दर्शन को भी अनीश्वरवादी दर्शन कहते क्योंकि वे भी ईश्वर को नहीं मानते फिर भी आस्तिक दर्शन कहे गये है क्योंकि वे वेद को मानते हैं। एक तीसरे अर्थ में भी आस्तिक-नास्तिक का प्रयोग किया जाता रहा है- परलोक की सत्ता में आस्था रखने वालों को आस्तिक, आस्था न रखने वालों को नास्तिक कहा गया। किंतु यह अर्थ भी भारतीय दर्शन को स्वीकार्य नहीं है। क्योंकि ऐसा मानने पर जैन एवं बौद्ध भी आस्तिक कहलाते इसलिए की इन दोनों दर्शनों कि भी परलोक की सत्ता में आस्था हैं। इस प्रकार चार्वाक ही एक ऐसा दर्शन है जो वेद, ईश्वर एवं परलोक इन तीनों अर्थों में नास्तिक है।

भारतीय के इन दार्शनिक संप्रदायों के वर्णन से यह बात तो स्पष्ट ही हो जाती है कि भारतीय दार्शनिक विचारधारा के अन्तर्गत मुख्यत: न्याय-वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदांत, चार्वाक, जैन एवं बौद्ध दर्शन सम्मिलित हैं। सांसारिक दु:ख रूपी बंधन और उनसे निवृत्ति अर्थात् मोक्ष ही भारतीय दर्शनों का मुख्य प्रश्न रहा है। यह दूसरी बात है कि दु:ख निवृत्ति के उपायों के विश्लेषण के संदर्भ में उनमें मतभेद रहा है। जैसे चार्वाक देह नाश को मोक्ष मानते हैं, न्याय-वैशेषिक, सांख्य अपने-अपने दर्शनों में पठित तत्त्वों के साक्षात्कार को ही मोक्ष का साधन मानते हैं, और शंकराचार्य आत्मा के ज्ञान को मोक्ष का साधन स्वीकार करते हैं। वैसे ही बौद्ध दर्शन आर्यचतुष्टय के ज्ञान को मोक्ष का साधन तथा योग दर्शन अष्टांग मार्ग, क्रिया योग और अभ्यास एवं वैराग्य को कैवल्य का साधन के रूप में मानता है। इस प्रकार भारतीय दर्शनों में मतभेद होने के साथ-साथ वे सभी मूल तत्त्व के साक्षात्कार से ही मोक्ष की उपलब्धि हो सकती है, इस पर एकमत हैं किंतु यह साक्षात्कार या शुद्ध ज्ञान कैसे हो इसके लिए प्रमाणों के रूप में साधन दिए गए हैं। इन प्रमाणों की संख्या में भी मतभेद दिखायी देता है,

जैसे-

१ **चार्वाक** केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानता है उसके अनुसार इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान ही यथार्थ अनुभव है क्योकि कोई भी ज्ञान इन्द्रियों की अपेक्षा रखता है।

२ **जैन-बौद्ध, वैशेषिक** प्रत्यक्ष एवं अनुमान दो ही प्रमाण मानते हैं।

३ **सांख्य-योग** प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द को प्रमाण मानते हैं।

४ **नैयायिक** प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द इन चार को प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है।

५ **मीमांसक तथा शंकराचार्य** प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द के साथ-साथ अर्थापत्ति और अनुपल्ब्धि को भी प्रमाण मानते हैं।

६ **पौराणिक** मत में संभव और ऐतिह्य को लेकर कुल आठ प्रमाण तथा तान्त्रिक चेष्टा को नवां प्रमाण स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार प्रमाणों के आधार पर दर्शनों की दो कोटियाँ होती हैं - तार्किक और श्रौत। श्रौत दार्शनिक वे हैं, जो मूल तत्त्व के अन्वेषण में श्रुति को ही मुख्य साधन मानते हैं, इनमें शंकराचार्य, जैमिनी, पाणिनी आदि आते हैं। ये वेदों को स्वत:प्रमाण मानते हैं। तार्किक दार्शनिक वे हैं, जो मूलतत्त्व के अनुसंधान में एकमात्र तर्क का सहारा लेते हैं, जिनमें सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, जैन-बौद्ध आदि शामिल हैं। ये वेदों को परत:प्रमाण मानते हैं। प्रमाणों के इस विवेचन में हम दो बातें स्पष्ट रूप से देखते हैं एक तो प्रमा की संख्या और दूसरे प्रमाणों की प्रमाणिकता।

प्रमाण मीमांसा के बाद हम भारतीय दर्शनों की तत्त्व मीमांसा का विवेचन करते हैं। प्रमाणों से प्रमेयों के सिद्धि होती हैं। इसमें मुख्य रूप से तीन पदार्थ मिलते हैं - जीव, जगत् और ईश्वर। कोई दार्शनिक तो इन तीनों की पदार्थता मानते हैं, कुछ केवल दो कि और कुछ केवल एक ही की किंतु सभी दर्शनों को इन तीनों की व्याख्या करनी पड़ती है इसलिए सभी दर्शनों ने संसार के मूल पदार्थों पर विचार किया है जैसे-

चार्वाक दर्शन पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये 4 तत्त्व स्वीकार करता है तथा जैनों के विचार से जीव और अजीव दो तत्त्व हैं, वैशेषिक के यहाँ सात पदार्थ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव स्वीकृत हैं, तथा न्याय ने प्रमाणप्रमेयादि सोलह पदार्थों का निरूपण किया है। वैयाकरण द्रव्य, गुण, कर्म और सामान्य चार पदार्थों को मानते हुए शब्द ब्रह्म को ही एकमात्र तत्त्व स्वीकार करते हैं। सांख्य दर्शन में 25 तत्त्व

परिगणित है । इन 25 तत्वों के साथ ईश्वर को शामिल करने पर कुल 26 तत्त्व योग दर्शन मानता है मीमांसको में प्रभाकर ने आठ पदार्थ माना है - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतंत्रता, शक्ति, सादृश्य और संख्या तथा कुमारिलभट्ट ने पाँच पदार्थ - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य एवं अभाव स्वीकार किया है।

इन मूल तत्त्वों को जानने से मोक्ष की प्राप्ति होती है और मूल तत्वों के विकृत रूपों को जानकर उनमें लिपटे रहने से प्राणी दु:ख या बंधन में पड़ा रहता है यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस मायाजाल में प्राणी न पड़े तथा वह परमानन्द की प्राप्ति कर सके इसके लिए योगदर्शन एवं बौद्ध दर्शन में तीनों प्रकार के अधिकारियों के लिए साधनों का उल्लेख किया गया है।

यद्यपि वेदों[1], उपनिषदों[2] से योग साधना की परम्परा चली आ रही है, किन्तु योग दर्शन का पहला उपदेशक हिरण्यगर्भ (परमर्षि कपिल) को माना जाता है। इसके अतिरिक्त योग दर्शन में आचार्य पतञ्जलि को ही सम्प्रज्ञात एवं असप्रज्ञात योगों का प्रतिष्ठापक माना जाता है। इनका समय १५० ईसा पूर्व माना जाता है, इनके द्वारा रचित योगसूत्र योग दर्शन का प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। योग दर्शन के बाद यदि हम बौद्ध दर्शन की बात करें तो इसकी स्थापना महात्मा बुद्ध ने की थी, जिनका समय ५ वीं शताब्दी ईसा पूर्व माना जाता है। इनके उपदेशों को लेकर बौद्ध दर्शन की परम्परा आगे बढ़ी। इस दर्शन का साहित्य त्रिपिटक साहित्य कहलाता है, जिसमें शामिल है -

१ सुत्तपिटक - इसमें धर्म सम्बन्धी बातों की चर्चा है। बौद्ध दर्शन की गीता धम्मपद इसी पिटक का भाग है।

२ अभिधम्मपिटक - में महात्मा बुद्ध के दार्शनिक एवं मनोविज्ञान सम्बन्धी विचारों का संकलन है।

---

[1] यस्माद्दते न सिध्यति यज्ञो विपिश्चितश्चन्।
स धीनां योगमिन्वति॥ ऋक्संहिता १.१८.७

[2] योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति। श्वेताश्वतरोपनिषद् २.१३

३ विनयपिटक - में नीति सम्बन्धी उपदेशों का वर्णन मिलता है।

भारतीय दर्शन प्रायः अपरोक्षानुभूति को प्रधान तथा बौद्धिक चिन्तन को गौण मानता है। इसलिए इसका उद्घोष है 'आत्मानं विद्धि' और लक्ष्य त्रिविध दुःखों का आत्यान्तिक नाश एवं अखण्ड आनन्द की प्राप्ति। इस लक्ष्य प्राप्ति हेतु योगदर्शन में त्रिविध साधन- अभ्यास-वैराग्य, क्रियायोग, अष्टाङ्गयोग तथा बौद्ध दर्शन में शील, समाधि और प्रज्ञा रूप त्रिविध साधन बताये गयें हैं। इनके अन्तर्गत अष्टाङ्गिक मार्ग और अष्टाङ्गयोग में ध्यान और समाधि को लक्ष्यप्राप्ति हेतु अनिवार्य बताया गया है। पातञ्जलयोगसूत्र में ध्यान का लक्षण देते हुए कहा गया है कि सात्त्विक वृत्ति द्वारा सम्बन्ध स्थापित धारणा वाले विषय में ज्ञान की एकतानता ही ध्यान है।[3] व्यासदेव के अनुसार ध्येय पर केन्द्रित, अन्य ज्ञानों से अस्पृष्ट ज्ञान की तैलधारावदविच्छिन्न धारा (सदृश्य प्रवाह) ही ध्यान है।[4] गोरक्ष पद्धति के अनुसार चित्त का योग शास्त्रोक्त ढ़ंग से शुद्धि कर आत्मतत्त्व का स्मरण करना ही ध्यान है।[5] जबकि घेरण्ड संहिता में ध्यान के तीन प्रकार बताये गये हैं - स्थूलध्यान, ज्योतिर्ध्यान, सूक्ष्मध्यान।[6] योगसूत्र में ही कहा गया है कि ध्येय अर्थमात्र को निर्भाषित करने वाला अपने ज्ञानात्मक रूप से भी रहित सा ध्यान ही समाधि है। बौद्धदर्शन में ध्यान को प्रतिकूल धर्मों को जला देने वाला और समाधि स्वभाव वाला कहा गया है तथा समाधि को कुशल चित्त की एकाग्रता कहा गया है। प्रस्तुत शोधग्रन्थ का प्रथम अध्याय योगदर्शन में वर्णित साधना पद्धति रखा गया है जिसके अन्तर्गत इस दर्शन में वर्णित साधनोपायों अष्टांगयोग, क्रियायोग, अभ्यास एवं वैराग्य का विस्तृत विवेचन किया गया है। तत्पश्चात दूसरे अध्याय में योगदर्शन में वर्णित ध्यान का स्वरूप तथा उसके भेद-प्रभेद तथा समाधि के आधार के रूप में ध्यान कैसे उपयोगी और योगशास्त्र के अन्य ग्रन्थों में ध्यान का क्या

---

[1] तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्। योगसूत्र, 3.2, पृ० 322.

[2] तस्मिनदेशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्यस्यैकतानता सदृशप्रवाहः। यो० सू० भा०, 3.2., पृ० 322

[5] यच्चित्ते निर्मला चिन्ता तध्दि ध्यानं प्रचक्षते। गो० पृ० ६१.१

[6] स्थूलज्योतिस्तथासूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः। घे० सं० ६.१।

स्वरूप मिलता है, साथ ही योगशास्त्र में समाधि का क्या स्वरूप है? तथा उसके भेद-प्रभेदों एवं उनके बीच क्या अन्तर है? इसका विवेचन व्यापक रूप में किया गया। तीसरे अध्याय में बौद्ध दर्शन की साधना पद्धति के व्यापक स्वरूप को दिखाया गया जिसके अन्तर्गत आर्य चतुष्टय, प्रतीत्यसमुत्पाद, अष्टांगमार्ग आदि प्रमुख बौद्ध सिद्धान्तों का विस्तृत रुप में वर्णन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में बौद्ध दर्शन में ध्यान का क्या स्वरूप है तथा ध्यानयोग के भेदों उनके बीच अन्तरों का वर्णन किया गया है, साथ ही बौद्ध दर्शन में वर्णित समाधि के स्वरूप, उनके भेदों-प्रभेदों, उनके बीच अन्तर तथा निर्वाण प्राप्ति में उसकी उपयोगिता आदि का विस्तृत रूपेण विवेचन किया गया है। पाँचवें अध्याय में दोनों दर्शनों में वर्णित ध्यान एवं समाधि की तुलनात्मक समीक्षा तथा उनकी समसामयिक प्रासंगिकता बतायी गयी है। जिसमें इनके स्वरूप, सिद्धि प्रक्रिया, प्रयोजन, आदि को लेकर तुलना की गयी है। साथ ही इस वैश्वीकरण के युग में इनकी क्या समसामयिक प्रसांगिकता है? समाज के लिए यह कैसे और कहाँ तक उपयोगी हैं? स्वास्थ्यवर्धक एवं सुसमाज के निर्माण में उनकी क्या भूमिका हो सकती है? आदि विषयों का उल्लेख है।

विषय चयन का औचित्य

बौद्धदर्शन एवं योगदर्शन में कैवल्य प्राप्ति के लिए जिन साधना पद्धतियों का विवेचन किया गया उनको पढ़कर सहजरूप से यह प्रश्न उठता है, कि दोनों दर्शनों के द्वारा बतायी गयी साधना पद्धतियों में क्या समानता है? क्या वैषम्यता है? अथवा दोनों परस्पर भिन्न ही है?, दोनों दर्शनों में वर्णित ध्यान एवं समाधि को लेकर क्या दृष्टिकोण है?, उनमें क्या समानता हैं?, क्या विषमता है?, समाज के लिये कौन कितना उपयोगी तथा सरल एवं सहज है? ध्यान और समाधि की समसामयिक युग में क्या उपयोगिता है? तथा आधुनिक समस्याओं के निदान में इनकी क्या भूमिका हो सकती है?, और इन पर आगे शोध की क्या सम्भावनायें है? आदि प्रश्नों के समाधान के लिये प्रस्तुत विषय का चयन शोधार्थी द्वारा किया गया है। यद्यपि पातञ्जल योग दर्शन तथा उसकी साधना पद्धति पर तथा बौद्ध

दर्शन तथा उसकी साधना पद्धति पर शोधकार्य हुआ है, लेकिन दोनों दर्शनों में विशेष रूप से ध्यान एवं समाधि को लेकर कोई पूर्वकृत शोधकार्य नहीं हुआ है। अतः शोधार्थी द्वारा इस शोधविषय का चयन किया गया है, जिससे ध्यान और समाधि का दोनों दर्शनों के आधार पर व्यापक और विस्तृत अध्ययन किया जा सके। चूंकि पातञ्जलयोगसूत्र में किसी भी अधिकार के लिये जो योग में प्रवृत्त होना चाहता है, चाहे उत्तम अधिकारी हो या मध्यम अथवा अधम ,बिना ध्यान, धारणा, समाधि के कैवल्य प्राप्त ही नहीं कर सकेगा। अतः इनमें कौन-सी वह विशेषता है जो इतनी महत्वपूर्ण है साथ ही वैश्वीकरण के इस युग में व्यक्ति तनाव्, अशान्ति आदि से ग्रसित है इनके निवारण के लिए ध्यान एवं समाधि कहाँ तक उपयोगी हैं, आदि को जानकर समाज को अवगत कराने के लिये भी इस शोध विषय का चयन शोधार्थी द्वारा किया गया है।

शोधकार्य का विषय क्षेत्र

प्रस्तुत शोधकार्य में दोनों दर्शनों की साधना पद्धतियों मुख्यत: ध्यान एवं समाधि विषयक दृष्टिकोणों की तुलनात्मक समीक्षा एवं समसामयिक सन्दर्भ में उनकी प्रसांगिकता तथा दोनों दर्शनों के अन्य प्रमुख दृष्टिकोणों के अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा, इसके लिए शोधार्थी द्वारा पातञ्जलयोगसूत्र (व्यासभाष्यसहित), घेरण्ड संहिता, गोरक्षपद्धति, हठयोग प्रदीपिका तथा त्रिपिटक, अभिधम्मत्थसङ्गहो, धम्मपद, विसुद्धिमग्ग, इत्यादि पुस्तकों, आलोचनात्मक ग्रन्थों तथा विभिन्न लेखों की सहायता ली जाएगी। साथ ही पातञ्जलयोगसूत्र तथा त्रिपिटक, विसुद्धिमग्ग और इनकी टीकाओं को भी शोध प्रबन्ध का आधार बनाया जाएगा। जिसमें पातञ्जलयोगसुत्र पर प्राप्त व्यास द्वारा रचित व्यासभाष्य, भोजराज द्वारा लिखित राजमार्तण्डवृत्ति, भावागणेश की वृत्ति, नगोजीभट्ट की छाया व्याख्या, रामानन्दयति की मणिप्रभा, नारायणतीर्थ की सूत्रार्थबोधिनी तथा योगदर्शन व्याख्या, हरिहरानन्द की भास्वती टीका की सहायता भी उपादेय होगी। इसके साथ ही व्यासभाष्य पर प्राप्त सबसे विश्वसनीय टीका वाचस्पति मिश्र की तत्त्ववैशारदी तथा

योगभाष्य पर विज्ञानभिक्षु की योगवार्तिक नाम की विस्तृत व्याख्या का उपयोग शोधार्थी द्वारा किया जाएगा।

शोधकार्य का उद्देश्य

- दोनों दर्शनों में प्रतिपादित ध्यान एवं समाधि सम्बन्धी विचारों के विभिन्न पक्षों को लेकर विस्तृत और व्यापक विश्लेषण एवं विवेचन करना।
- ध्यान और समाधि सम्बन्धी सिद्धान्तों का व्यावहारिक तथा समसामयिक युग में उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये अध्ययन करना।
- ध्यान और समाधि से सम्बन्धित अन्य विचारों का भी बोध कराते हुए समाज को इस भौतिकतावादी युग में इसकी महत्ता और उपयोगिता तथा आवश्यकता से भी अवगत कराना।
- प्रस्तुत शोध के माध्यम से दोनों दर्शनों के आपसी सन्निकटता को भी दिखाना।
- दोनों दर्शनों के ध्यान एवं समाधि विषयक विचारों की तुलनात्मक समीक्षा करना।

पूर्ववर्ती शोधकार्य

शोधार्थी द्वारा आन्वेषित् पूर्वकृत् शोधकार्यों का विवरण निम्न प्रकार है-

शोध-प्रबन्ध

- पाण्डेय, उर्मिला, *महर्षि पतञ्जलि एवं महात्मा बुद्ध की योग साधना पद्धति*, देव संस्कृत विश्वविद्यालय शान्तिकुंज हरिद्वार, उत्तराखण्ड, 2009.
- उपाध्याय, अमिताब, *स्थिविरवाद बौध्द साधना एवं पातञ्जलयोग साधना का तुलनात्मक अध्ययन*, बी० एच० यू०, 2014.
- मणि, भरत, *अष्टांगयोग एवं अष्टांगमार्ग का तुलनात्मक अध्ययन*, ज०ने०वि०, नई दिल्ली, 2017.

* काद्यान, सुषमा, *बौद्ध एवं पातंजल योगसाधना एक तुलनात्मक अध्ययन, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक*,२००९.

लेख

* शर्मा, राजेश, *बौद्ध एवं योग दर्शन में वर्णित ध्यान एवं समाधि का तुलनात्मक अध्ययन*, बौद्ध प्रज्ञा सिन्धु, न्यू भारती बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, 2006.

विद्यमान शोधकार्यों से प्रस्तावित शोधकार्य का वैशिष्ट्य

योगदर्शन एवं बौद्धदर्शन के पूर्ववर्ती शोधकार्यों से प्रस्तुत शोधकार्य इसलिये भिन्न है कि इसमें दोनों दर्शनों के विभिन्न आचार्यों द्वारा दिये गये ध्यान एवं समाधि सम्बंधी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जायेगा। इसमें हठ योग तथा बौद्धदर्शन के हीनयान और महायान आदि सम्प्रदायों के ध्यान और समाधि सम्बन्धी विचारों का अध्ययन विस्तृत और व्यापक रूप में किया जायेगा। यह एक अन्तर्विषयी प्रकार का शोध कार्य होगा, जबकि पूर्वशोधकृत शोध कार्यों में योगसाधना की समस्त पद्धति और सिद्धान्तों का मात्र पतञ्जलि और महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर किया गया है। जबकि शोधार्थी का यह प्रयास रहेगा की दोनों दर्शनों के विभिन्न आचार्यों के विचारों और सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर अध्ययन करना। जिससे कि आगे आने वाले शोधार्थियों को इस क्षेत्र में कार्य करने के लिये पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो सके। इस दृष्टि से यह एक नवीन शोधकार्य होगा।

शोध-प्रविधि

सामग्री संकलन -

सामग्री संकलन में आसन पद्धति से कार्ड विधि का उपयोग करते हुये सर्वेक्षण विधि उपादेय होगी। मूल तथ्य हेतु आलोचनात्मक संस्करण को आधार बनाया जायेगा।

सामग्री विश्लेषण -

- प्रस्तावित शोध कार्य से सम्बन्धित मौलिक ग्रन्थों एवं उस पर प्राप्त टीकाओं एवं व्याख्याओं के अध्ययन हेतु वर्णनात्मक एवं विवेचनात्मक शोध-प्रविधि उपादेय होगी।
- योगदर्शन और बौद्धदर्शन में वर्णित ध्यान और समाधि की व्याख्या करने के लिये विवरणात्मक शोध-प्रविधि उपादेय होगी।
- योगदर्शन और बौद्धदर्शन में वर्णित ध्यान और समाधि की अवधारणा एवं उसके स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन करने के क्रम में तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक शोध-प्रविधि अनुकरणीय रहेगी।

<u>प्रथम अध्याय</u>

योग दर्शन में वर्णित साधना पद्धति

महाभारत का यह कथन - **'न तु योगमृते प्राप्तुं शक्या सा परमा गति: ।'** योग साधना की महत्ता को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है। अन्य दर्शनों की भांति योगसाधना का भी लक्ष्य त्रिविध दु:खों से निवृत्ति तथा परम लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति करना है, इसकी सिद्धि के लिए योग दर्शन में पदार्थों के शुद्ध ज्ञान -अर्थात 'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति:' इस श्रुति के तथ्य को स्वीकृत किया गया है। इस शुद्ध ज्ञान के प्रथम स्वरूप की प्राप्ति बुद्धि के शुद्ध सात्विक वृत्ति द्वारा होती है जिसे योग दर्शन में संप्रज्ञात योग और दूसरा उत्तम स्वरूप जो वृत्तिहीन स्थिति में आत्मा का अपरोक्षानुभव है असंप्रज्ञात योग या मोक्ष कहा गया है। इन दोनों प्रकार के शुद्ध ज्ञान को प्राप्त करने की प्रक्रिया का रचनात्मक स्वरूप ही योग साधना पद्धति है।

योग साधना के अन्तार्गत योग को विशेष रूप से चित्त का एक विशिष्ट प्रकार का प्रशिक्षण या निग्रह माना गया है। शरीर तथा इंद्रियों का निग्रह योग के अंग रूप से भले ही अपरिहार्य हो किंतु वह योग नहीं है। योग साधना पद्धति का वास्तविक उपादान चित्त (अन्त: करण) ही है।[7] और इस दर्शन में चित्त त्रिगुणात्मक माना गया है इसलिए चित्त की वृत्तियाँ भी सात्त्विक, राजस, तामस त्रिविध होती है। चित्त की पांच भूमियों[8] (क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र, एवं निरुद्ध) में प्रथम तीन भूमियों में हुआ वृत्ति निरोध स्वल्पकालिक होता है इससे मोक्ष की प्राप्ति असंभव है इसी लिए तो इन भूमियों की समाधि साधना की दृष्टि से सर्वथा निष्फल एवं अनुपयोगी बताई गई है। एकाग्र एवं निरुद्ध भूमि की समाधि

---

[7] चित्तमन्त:करणसामान्यम्। योगवार्तिक पृ० १२ ।,
चित्तशब्देनान्त:करणं बुद्धिमुपलक्षयति। तत्त्ववैशारदी पृ० ७।

[8] क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमय:। पातञ्जलयोगदर्शनम् १.१ पृ० १

योग साधना की दृष्टि से उपयोगी है जिसके तहत योग साधना पद्धति में पहले संप्रज्ञात योग की साधना और सिद्धि, तत्पश्चात असंप्रज्ञात योग की साधना और सिद्धि की जाती है। योग साधना का प्रतिपाद्य विषय स्वस्थ शरीर और सबल आत्मा दोनों है। स्वस्थ शरीर होने पर ही चित्त निर्मल होता है तथा चित्त निर्मल होने पर ही आत्मलाभ संभव है। और इस आत्मा के यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति ही तो योगदर्शन का मूल उद्देश्य है।

स्थूल रूप से देखें तो हम योग साधना पद्धति का क्रम इस प्रकार रख सकते हैं- अष्टांग योग का पालन करते हुए क्रियायोग की प्राप्ति, जिससे अभ्यास एवं वैराग्य की सिद्धि, तत्पश्चात् समाधि सिद्धि, और इस समाधिसिद्धि के द्वारा कैवल्य की प्राप्ति अर्थात् योग साधना के परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति, जहाँ जीव त्रिविध दु:खों से निवृत्ति पा लेता है। बिना साधन के साध्य की सिद्धि नहीं होती, इसलिए योग दर्शन में तीनों प्रकार के अधिकारियों के लिए योग साधना के त्रिविध साधनोपाय बताए गए हैं -

१ - उत्तमाधिकारियों के लिए अभ्यास और वैराग्य।

२ - मध्यमाधिकारियों के लिए क्रियायोग।

३ - मन्दाधिकारियों के लिए अष्टांग योग जिसमें योग साधना के सभी साधनों का समावेश है।

हम यहां सर्वप्रथम योग साधना पद्धति के अंतर्गत योग के साधन अष्टांग योग का वर्णन करेंगे -

अष्टांग योग

योग के आठ अंग हैं[9] - क्रमानुसार इनका वर्णन इस प्रकार है-

यम
नियम
आसन
प्राणायाम
प्रत्याहार

[9] यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। पा० यो० २.२९ पृ० २६५

धारणा
ध्यान
समाधि

यम - यम निषेधात्मक धर्म होते हैं अर्थात इनका स्वरूप भावात्मक नहीं होता। जाति, देश, काल और आचार परंपरा से सीमित न होते हुए ये यम सार्वभौम महावृत्त कहे जाते हैं।[10]

यम के भेद - ये 5 यम कहे जाते हैं[11] -

अहिंसा	सत्य	अस्तेय	ब्रह्मचर्य	अपरिग्रह

अहिंसा - सब प्रकार (शारीरिक, वाचिक और मानसिक रूप) से सदैव सब प्राणियों को पीड़ा न पहुंचाना अहिंसा है।[12] इसके बाद वाले सभी यम और नियम अहिंसामूलक होते हैं।

सत्य - जो पदार्थ जैसा हो उसके संबंध में वैसी ही वाणी और वैसा ही मन होना सत्य कहा जाता है।[13] अर्थात् जैसा देखा गया या अनुमित किया गया या सुना गया हो उनके संबंध में वैसी ही वाणी और वैसा ही मन रखना सत्य है। ऐसी वाणी सभी प्राणियों के उपकार के लिए प्रवर्तित होती है प्राणियों का अपकार करने के लिए नहीं। यदि वह बोली प्राणियों की हानि करती है तो असत्य नहीं होगी बल्कि पाप रूप होगी और पुण्याभाव से नरक ही प्राप्त होगा। इसलिए सभी प्राणियों के लिए हितकारी एवं सत्य वचन बोलना चाहिए।[14]

अस्तेय - शास्त्रज्ञा के विपरीत दूसरों से द्रव्य ग्रहण करना स्तेय है।[15] और स्तेय की इच्छा के भी अभाव रूप का स्तेयाभाव अस्तेय है।

---

10 जातिदेशकालसमयानवच्छिन्ना: सार्वभौमा महाव्रतम्। पा० यो० २.३१ पृ० २७१

11 अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा: यमा:। पा० यो० २.३० पृ० २६६

12 तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोह:। वहीं।

13 सत्यं यथार्थे वाङमनसे। यथा दृष्टं यथाऽनुमितं यथा श्रुतं तथा वाङमनश्च। वहीं।

14 तस्मात परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात्। वहीं।

15 स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परत: स्वीकरणम्। वहीं।

ब्रह्मचर्य - गुप्तेन्द्रिय अर्थात जननेंद्रिय का निग्रह ब्रह्मचर्य है ।[16] उपस्थ का संयम 8 क्रियाओं में अप्रवृत्तिरूप का होता है ।[17]

अपरिग्रह - विषयों के प्राप्ति, रक्षा और तद्विषयक आसक्ति तथा हिंसादि दोषों के देखने के कारण उन विषयों का स्वीकार न करना अपरिग्रह है ।[18]

नियम - शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नियम कहे जाते हैं ।[19]

शौच	संतोष	तप	स्वाध्याय	ईश्वरप्रणिधान

शौच - शौच अर्थात् सफाई दो प्रकार की होती है। **बाह्य शौच** - जो मिट्टी और जल के सहयोग से उत्पन्न होने वाली है तथा **अभ्यान्तर शौच** - मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा इत्यादि की भावना करने से चित्त के दोषों का धोना है ।[20]

संतोष - विद्यमान साधनों से अधिक साधनों का संग्रह करने की अनिच्छा संतोष है ।[21]

तप - द्वन्द्वों (बुभुक्षा और पिपासा, सर्दी और गर्मी इत्यादि) को सहना तप है ।[22]

स्वाध्याय - मोक्षशास्त्रों का अध्ययन अथवा ओंकार का जप स्वाध्याय है ।[23]

ईश्वरप्रणिधान - परम गुरु ईश्वर के प्रति सभी कर्मों का अर्पण करना ईश्वरप्रणिधान है ।[24]

आसन - जो शारीरिक स्थिति स्थायी और सुखद हो वह आसन है[25] अर्थात् जो दीर्घकाल तक चंचलता से रहित और सुखद हो वह आसान है जैसे पद्मासन, वीरासन ,भद्रासन आदि। साधक आसनजय के कारण से शीतोष्णादि द्वन्द्वों से पीड़ित नहीं होता।

---

[16] ब्रह्मचर्य गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः। पा० यो० २.३० पृ० २६६

[17] ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टाधालक्षणं पृथक्।
स्मरणं कीर्तनं केलि प्रेक्षणं गुह्यभाषमम्॥ दक्षसंहिता।

[18] विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रह इत्येते यमाः। वहीं।

[19] शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। पा० यो० २.३२ पृ० २७३

[20] तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम्,आभ्यन्तरं चित्तमलानामाक्षालम्। वहीं।

[21] सन्तोषः सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा। वहीं।

[22] तपो द्वन्द्वसहनम्। वहीं।

[23] स्वाध्यायो मोक्षाशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा। वहीं।

[24] ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन परमगुरौ सर्वकर्मार्पम्। वहीं।

[25] स्थिरसुखमासम् पा० यो० २.४६ पृ० २९६

प्राणायाम - और आसनजय के होने पर श्वास और प्रश्वास को रोकना प्राणायाम है ।[26] यह रेचक पूरक और कुंभक त्रिविध भेद से देश समय और संख्या के द्वारा परीक्षित होता हुआ दीर्घ और सूक्ष्म होता है। प्राणायाम कि सिद्धि से प्रकाश पर पड़ा हुआ पर्दा क्षीण हो जाता है और प्राणायाम के अभ्यास से ही धारणा करने में मन की सामर्थ्य होती है।

प्रत्याहार - इंद्रियों के विषयों के साथ सन्निकर्ष ना होने पर इंद्रियों का चित्त के स्वरूप का अनुकरण सा कर लेना प्रत्याहार है ।[27] मधुमक्खीवत जब इंद्रियाँ चित्त का निरोध होने पर निरुद्ध हो जाती हैं तो यही प्रत्याहार कहा जाता है।

धारणा - सात्त्विक वृत्ति से युक्त चित्त को किसी भीतरी या बाहरी देश में लगाना धारणा है ।[28]

ध्यान - उस धारणा वाले विषय में ज्ञान की एकतानता ही ध्यान है ।[29]

समाधि - ध्येय अर्थमात्र को निर्भाषित करने वाला अपने ज्ञानात्मक रूप से भी रहित सा ध्यान ही समाधि है ।[30]

1.2 - क्रियायोग

क्रिया एव योग: क्रिया योग:[31] अर्थात् तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान क्रियायोग है ।[32] इनमें तप से अशुद्धि का नाश हो जाने से (अणिमा आदि) कायसिद्धि और (दूरश्रवणादि) इन्द्रियसिद्धि प्राप्त होती है।, स्वाध्याय (के स्थिर होने से)इष्ट देवताओं का सम्पर्क होता है। और ईश्वरप्रणिधान (स्थिर होने) से समाधि (सम्प्रज्ञात) की सिद्धि होती है, इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि इन तीनों क्रियाओं के करने से योग सिद्ध होता है इसलिए इन्हें क्रियायोग कहा जाता है। क्रिया योग की विधि मध्यमाधिकारियों के लिए मानी गई है। अष्टांगयोग में अंतरंग धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास सबीज समाधि के लिए तीनों प्रकार के अधिकारियों को करना आवश्यक होता है। क्रियायोग समाधि को

---

26 तस्मिन सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम: । पा० यो० २.४९ पृ० ३०१ ।

27 स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरुपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार: ।पा० यो० २.५४ पृ० ३१४

28 देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। पा० यो० ३.१ पृ० ३२०

29 तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। पा० यो० ३.२ पृ० ३२२

30 तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरुपशून्यमिव समाधि: । पा० यो० ३.३ पृ० ३२३

31 क्रिया एव योग: क्रियायोग: योगसाधनत्वात, योगोपायत्वाद्योग: । योगवार्तिक पृ० १३३

32 तप: स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग: । २.१ पृ० १५६

भावित करने के लिए और क्लेशों को हल्का करने के लिए होता है।[33] जिससे साधक आगे चलकर क्लेशों को हल्का कर संप्रज्ञात समाधि की सिद्धि प्राप्त करता है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पांच क्लेश होते हैं।[34] ये क्लेश मिथ्या ज्ञान होने से कारण-कार्य को प्रवर्तित करते हैं और प्राणियों के जन्म, आयु और भोग रूप कर्म फल की परंपरा का निष्पादन करते हैं। और साधक के परम लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करते हैं। इनमें -

अविद्या - अविद्या, अस्मिता आदि परवर्ती चारों क्लेशों की प्रसव भूमि है। अनित्य, अपवित्र, दु:खमय और अनात्म पदार्थों में क्रमश: नित्य, पवित्र, सुखमय और आत्मा का ज्ञान होना अविद्या है।[35]

अस्मिता - दृक शक्ति (पुरुष) और दर्शनशक्ति (बुद्धि) की प्रतीयमान एकात्मता अस्मिता है।[36] जिसके द्वारा पुरुष को बुद्धि से भिन्न न देखते हुए उस बुद्धि को लोग अविद्या के कारण आत्मा समझ लेते हैं।

राग - सुख का अनुवर्ती क्लेश राग है।[37] सुख के अनुभविता को सुखानुभव की स्मृतिपूर्वक सुख या सुख के साधनभूत पदार्थ के प्रति जो चाह, लालच या लोलुपता होती है वह राग है।[38]

द्वेष - दु:ख का अनुवर्ती क्लेश द्वेष है।[39] दु:ख के अनुभविता को दु:खानुभव की स्मृति पूर्वक दु:ख या दु:ख के साधनभूत पदार्थ के प्रति जो हिंसा, मन्यु, मारने की इच्छा या क्रोध होता है, वह द्वेष है।

अभिनिवेश - मरणत्रासानुभवजन्य संस्कार रूप से स्थिर, विद्वानों में भी उसी प्रकार से वर्तमान क्लेश अभिनिवेश है।[40]

---

33 स हि क्रियायोग: समाधिभावनार्थ: क्लेशतनूकरणार्थश्च। पा० यो० २.२ पृ० १५९

34 अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशा: पञ्च क्लेशा:। पा० यो० २.५ पृ० १६८

35 अनित्याऽशुचिदु:खानात्मसु नित्यशुचिसुखाऽऽत्मख्यातिरविद्या। पा० यो० २.५ पृ० १६८

36 दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता। पा० यो० २.६ पृ० १७४

37 सुखानुशयी राग:। पा० यो० २.७, पृ० १७६

38 सुखाभिज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्व: सुखे तत्साधने वा यो गर्धस्तृष्णा लोभ: स राग इति। पा० यो० भा० २.७ पृ० १७६

39 दु:खानुशयी द्वेष:। पा० यो० २.८ पृ० १७७

40 स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढ़ोऽभिनिवेश:। वहीं।

क्लेशों की जो स्थूल वृत्तियाँ है, वे क्रिया योग से हल्की कर दी जाने पर प्रंसख्यान नामक विवेकाख्याति के द्वारा नष्ट करने योग्य हो जाती हैं जिससे कि उनकी वृत्तियाँ सूक्ष्म हो जाए अर्थात् दग्धबीज सदृश हो जाये।[41] या कहे कि उन क्लेशों की वृत्तियाँ क्रियायोग से हल्की तथा विवेकाख्याति के द्वारा नष्ट की जाने योग्य होती हैं।[42] तात्पर्य यह है कि क्लेशों की स्थूलवृत्तियों का उच्छेद तो कम प्रयास वाले उपाय से अर्थात क्रिया योग से हो जाता है, किंतु उनकी सूक्ष्म (अर्थात तनुकृत तथा दग्धबीजीकृत) वृत्तियों का उच्छेद महत्तर प्रयास वाले उपायों अर्थात क्रमशः **१. विवेकाख्याति और २. असंप्रज्ञात** के द्वारा ही संभव होता है इस प्रकार क्लेशों के हान का क्रम यह हुआ -

१ - क्रिया योग के द्वारा क्लेशों का तनुकरण।

२ - प्रंसख्यान के द्वारा तनूकृत क्लेशों का सूक्ष्मीकरण अर्थात दग्धबीजीकरण।

३ - असंप्रज्ञातसमाधि के द्वारा उन दग्धबीज क्लेशों का चित्त के साथ साथ प्रविलीनीकरण।

इस प्रकार अविद्या रूपी क्लेशों के नाश से बुद्धि और पुरुष के संयोग का नाश होता है।[43] अर्थात् सांसारिक बंधन की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है यही हान् और पुरुष का कैवल्य है और इस हान की प्राप्ति का उपाय अबाधित मिथ्या ज्ञानशून्य विवेकाख्याति है। चूंकि क्रियायोग के द्वारा ही अभ्यास एवं वैराग्य की सिद्धि होती है अर्थात् क्रियायोग संपन्न होने पर ही अभ्यास और वैराग्य संभव इसलिए अभ्यास और वैराग्य का वर्णन अग्रलिखित है -

1.3. अभ्यास और वैराग्य

योग साधना के प्रधान उपाय अभ्यास एवं वैराग्य है। वैराग्य को प्राप्त करने के लिए उत्तम अधिकारी जन्मना सक्षम होते हैं । अभ्यास एवं वैराग्य से चित्तवृत्तियों का निरोध होता।[44] वैराग्य के द्वारा चित्तवृत्तियों की ऐहिक और आमुष्मिक विषयों की ओर से सहज उन्मुखता

---

[41] क्लेशानां या वृत्तयः स्थूलास्ताः क्रियायोगेन तनूकृताः सत्यः प्रसंख्यानेन ध्यानेन हातव्या यावत्सूक्ष्मीकृता यावद्दग्धबीजकल्पा इति। पा० यो० भा० २.११, पृ १८१

[42] ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः। पा० यो० २.११, पृ०१८१

[43] तस्यादर्शनस्याभावाद बुद्धिपुरुषसंयोगाभाव आत्यन्तिको बन्धनोपरम इत्यर्थः। पा० यो० भा० २.२५ पृ० २५१

[44] अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। पा० यो० १.१२ पृ० ५०

रोकी जाती है अर्थात उनकी ओर से चित्त को विमुख किया जाता है फिर अभ्यास के द्वारा चित्त को एकाग्र या स्थिर किया जाता है।

1. अभ्यास - इस उपाय से चित्त को विवेकज्ञान की ओर एकाग्र किया जाता है। सात्विक वृत्ति वाली स्थिति से युक्त चित्त के निमित्त प्रयत्न करना अभ्यास है।[45] ऐसा अभ्यास दीर्घकाल पर्यंत, लगातार तथा सत्कार सहित किए जाने पर दृढ़भूमि होता है।

2. वैराग्य - ऐहिक (स्त्रियाँ, अन्न, पान और प्रभुता आदि) और पारलौकिक विषयों (स्वर्ग, वैदेह्य और प्रकृतिलयत्वलाभरूपी वेदबोधित) से नि:स्पृह चित्त का वशीकारसंज्ञा नामक अपर वैराग्य होता।[46] अपरवैराग्य तक पहुंचने के लिए चित्त की ये क्रमिक स्थितियाँ होती हैं अर्थात ये चार अपरवैराग्य का क्रम या संज्ञाएं होती हैं[47]-

1. यतमान संज्ञा - रागादि के पाक के लिए यत्न करना।

2. एकेंद्रीय संज्ञा - पके हुए कषायों का मन में उत्सुकता के रूप में रहना।

3. व्यतिरेक संज्ञा - पके हुए कषायों से मन का व्यतिरेक।

4. वशीकार संज्ञा - लौकिक तथा अलौकिक विषयों की उपेक्षा कर देना।

पुरुष की ख्याति के कारण गुणों के प्रति जो उपेक्षा बुद्धि होती है वह पर वैराग्य है।[48] अर्थात् इसमें पुरुषख्याति के फलस्वरूप साधक के चित्त की सात्त्विक वृत्ति के प्रति भी वितृष्णा हो जाती है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है की अपरवैराग्य लौकिक और पारलौकिक विषयों के प्रति वितृष्णा के रूप का होता है और परवैराग्य ज्ञान मात्र के प्रति अर्थात् सत्वगुण के प्रति भी वितृष्णा के रूप का होता है।

इस प्रकार पूर्वजन्मों के पुण्यों से इस जन्म में केवल अभ्यास और वैराग्य के द्वारा एकाग्र चित्त वाला साधक वैराग्य को सुदृढ़ कर धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास कर योग सिद्धि को प्राप्त करता है।

---

[45] तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यास:। पा० यो० १.१३, पृ० ५३

[46] दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्। पा० यो० १.१५ पृ० ५६

[47] यतमानसंज्ञा, व्यतिरेकसंज्ञा, एकेन्द्रियसंज्ञा, वशीकारसंज्ञा चेति चतस्र: संज्ञा इत्यागमिन:। तत्त्ववैशारदी पृ० ४८

[48] तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्। पा० यो० १.१६, पृ० ५९

द्वितीय अध्याय

योगदर्शन में वर्णित ध्यान एवं समाधि का स्वरूप

2.1. योग दर्शन में ध्यान का स्वरूप

योग के आठ अंगों में से प्रारंभिक पांच अंगों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार) को आचार्य पतंजलि ने संप्रज्ञात योग के प्रति बहिरंग माना है[49] तथा अंतिम तीन अंगों को संप्रज्ञात योग के प्रति अंतरंग कहा है।[50] धारणा ध्यान एवं समाधि इन तीनों की समुदाय रूप से परिभाषित संज्ञा संयम है।[51] धारणा से ध्यान होता है और ध्यान से समाधि इसलिए इनका पौर्वापर्य निश्चित है, इसी क्रम के अनुरोध से आचार्य पतंजलि ने पहले धारणा का फिर ध्यान का और बाद में समाधि का लक्षण निरूपित किया इनमें चित्त को किसी बाहरी (देव, मूर्ति आदि) या भीतरी (नाभिचक्र, शीर्ष प्रकाश, नासिकाग्र, जिह्वाग्र आदि) प्रदेश में लगाना धारणा है, जिसका आशय है कि चित्त को उस देश के अतिरिक्त अन्य सभी स्थलों से हटाकर उसी देश में स्थिर करना, स्थापित करना।

धारणा वाले विषय में ज्ञान की एकतानता ही ध्यान है[52] अर्थात् उस (धारणा वाले) विषय में, ध्येयरूप आलम्बन वाले (ध्येय पर ही केंद्रित) तथा अन्य ज्ञानों से अस्पृष्ट ज्ञान की अविच्छिन्न तथा अभिन्न धारा ही ध्यान है। या कहे कि उस देश या विषय में जिसमें की धारणा की गई थी उस ध्यायमान वस्तु पर ही अवलंबित ज्ञान की तैलवद्वविच्छिन्नधारा अर्थात् तेल की गिरती हुई धारा के समान अखंड़ प्रवाह ही ध्यान है। आचार्य व्यास इसे आगे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि एक सरीखा बहाव, एक ही रूप

---

[49] उक्तानि पञ्च बहिरङ्गाणि साधनानि। पा० यो० पृ० ३२०

[50] त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्य:। पा० यो० ३.७ पृ० ३२८

[51] त्रयमेकत्र संयम:। पा० यो० ३.४ पृ० ३२५

[52] तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्। पा० यो० ३.२ पृ० ३२२

से जिस ज्ञान का प्रसारण होता रहता है, वह ज्ञान ध्यान है।[53] सर्वदर्शनसंग्रह में भी कहा गया है कि उक्त स्थानों में विद्यमान ध्येय (प्रसन्नमुख, चतुर्भुज, विष्णु आदि) के आकार में परिणत ज्ञान (प्रत्यय) का, असदृश्य ज्ञानों का त्यागपूर्वक, प्रवाहित होना ध्यान है।[54] यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है की धारणा में चित्त का स्थिरीकरण होता है और ध्यान में स्थिर किए गए चित्त को उसी दिशा में प्रवाहित होने दिया जाता है। विष्णु पुराण में भी कहा गया है कि उस (ध्येय) के रूप के ज्ञान में एक ही तरह से रहने वाला तथा दूसरे विषयों के व्यवधान से रहित (ज्ञान का) प्रवाह ध्यान है।[55]

ध्यान के भेद - पातंजलयोगसूत्र के अलावा अन्य योग शास्त्र के विभिन्न ग्रंथों में ध्यान एवं उसके भेदों की व्याख्या मिलती है जैसे -

सिद्धसिद्धांतपद्धति नामक अपने ग्रंथ में आचार्य गोरक्षनाथ ने कहाँ है कि जो साधक योग शास्त्र में वर्णित अष्टांग योग का अभ्यास (साधना) कर, गुरु द्वारा विधिपूर्वक उपदेश प्राप्त कर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुरक, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा चक्र इन छः चक्रों का भेदन कर प्राण एवं अपान वायु को सुषुम्ना मार्ग से उर्ध्वमुख कर सूर्य.प्रभासदृश अखंड़ ज्योति को नासाग्र भाग पर अपनी दृष्टि स्थिर कर ध्यान में देखते हैं तथा तरल जल के समान नीलवर्ण आकाशतत्त्व का ध्यान करते हैं, ऐसे प्रख्यात योग साधक भी परम पद की प्राप्ति न होने से दुखी ही रहते हैं।[56] उनके अनुसार नाम.रूप से परे अद्वैत स्वरूप परमात्मा ही आत्मा है या जो.जो वस्तु प्रतीत हो उसमें आत्म स्वरूप की ही भावना करनी चाहिए। समस्त भूतों में समदृष्टि (आत्म दृष्टि) अथवा आत्मस्वरूप (समस्त प्राणियों में एकमात्र परमात्मा की व्याप्ति) की भावना ही ध्यान है। यही ध्यान

---

53 तस्मिन्देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्। पा० यो० भा० ३.२ पृ० ३२२

54 तस्मिन्देशे ध्येयावलम्बनस्य प्रत्ययस्य विसदृशप्रत्ययप्रहाणेन प्रवाहो ध्यानम्। सर्वदर्शनसंग्रह पृ० ६२३

55 तद्रूपप्रत्ययैकाग्रया सन्ततिश्चान्यानिःस्पृहा। विष्णुपुराण ६.७.८९

56 अष्टाङ्गं योगमार्गं......हा कष्टभाजः। सि० सि० प० ६.८५ पृ० १०२

का लक्षण है।[57] ध्यान से अद्भुत चेतना प्राप्त होती हैं, योग विशारद धारणा के 12 गुना अभ्यास को ध्यान कहते हैं।

इसी प्रकार आचार्य गोरक्षनाथ ने अपने **गोरक्ष पद्धति** ग्रंथ में भी ध्यान के विषय में कहा है कि स्मृ धातु समस्त चित्तों की वाचक है। निर्मल चित्त में चिंतन ध्यान कहलाता है यह ध्यान मुख्यत: दो प्रकार का होता है सकल व निष्कल। चर्या भेद इत्यादि से सकल ध्यान, निष्कल ध्यान निर्गुण होता है।[58]

आचार्य गोरक्षनाथ ने गोरक्ष पद्धति में ध्यान के निम्नलिखित भेद भी गिनाए हैं.

मूलाधार चक्र ध्यान
स्वाधिष्ठान चक्र ध्यान
मणिपुरक.चक्र ध्यान
अनाहत चक्र ध्यान
तालु चक्र ध्यान
भ्रूमध्य चक्र ध्यान
आकाश चक्र ध्यान

1. मूलाधार चक्र ध्यान - पहला चक्र सुवर्ण आभा व चार दलों वाला मूलाधार है। इसका कुंड़लिनी से युक्त ध्यान करने से समस्त पापों का नाश होता है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र ध्यान - स्वाधिष्ठान छह पत्रों से युक्त माणिक्य कि प्रभा वाला चक्र है। नासिका पर दृष्टि केंद्रित कर ध्यान करने से योगी सुखी होता है।

3. मणिपुरक.चक्र ध्यान - मणिपुरक चक्र उदयमान आदित्य के समान है नासिका पर दृष्टिरखकर ऐसा ध्यान करने से योगी समस्त जगत को क्षुभित कर सकता है।

4. अनाहत चक्र ध्यान - अनाहत चक्र नाम से विख्यात हृदयाकाश में बाणलिंग शिव का ध्यान नासाग्र पर करने से योगी ब्रह्ममय हो जाता है।

---

57 कश्चन परमाद्वैतस्य भाव: स एव आत्मा इति, यथा यद यत स्फुरति तत तत्स्वरूपमेव-इति भावयेत्। सर्वभूतेषु समदृष्टिश्च इति ध्यानलक्षम्। सिद्धसिद्धान्तपद्धति।२.३८ पृ० ४२

58 द्विविधं भवति ध्यानं सकलं निष्कलं तथा। चर्याभेदेन सकलं निष्कलं निर्गुणं भवेत्। गोरक्षपद्धति २.६२ पृ० ५८

5. तालु चक्र ध्यान - कंठ के मध्य में स्थित दीपक की प्रभा वाला विशुद्धि चक्र नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि केंद्रित करके ध्यान करने से आनन्दमय होता है।

6. भ्रूमध्य चक्र ध्यान - भ्रूमध्य में श्वेत वर्ण (आज्ञा चक्र) का नासिका पर दृष्टि रखकर ध्यान करने से योगी आनंदमय हो जाता है।

7. आकाश चक्र ध्यान - निर्मल गगन सदृश व किरणों के समान अपने को सर्व व्यापक, ध्यान करने से योगी मुक्त हो जाता है।

योग शास्त्र के ग्रंथ **घेरण्ड संहिता** में घेरण्ड ऋषि ध्यान के यह तीन प्रकार बताएँ हैं[59]-

स्थूल ध्यान	**ज्योति ध्यान**	**सूक्ष्म ध्यान**

1. स्थूल ध्यान - स्थूल ध्यान मूर्तिमय कहा गया है।[60] इस ध्यान को करने की विधि है, साधक सर्वप्रथम अपने हृदय में उत्तम अमृत समुद्र का ध्यान करें, उसके मध्य में बालुकामय रत्नों से परिपूर्ण रत्नदीप का ध्यान करें, फिर उसके चारों और नीम्ब के पुष्पों तथा मालती, चमेली और स्थल कमलों के सुगंध से सब दिशाएं सुगंधित है ऐसा ध्यान करें, उसके मध्य में योगी कल्पवृक्ष का स्मरण करें वहां भ्रमर, कोयल, गुंजन और मणि मंड़प का ध्यान करें उसके मध्य में योगी मनोहर पलंग का ध्यान करें, तथा गुरु उक्त ध्यान और इष्ट देवता का ध्यान करें जिस देव का जो भूषण और वाहन है उसका नित्य ध्यान करें यही स्थूल ध्यान है।

2. ज्योति ध्यान - ज्योति ध्यान तेज स्वरूप होता है।[61] इससे योग सिद्धि और आत्मसिद्धि का प्रत्यक्ष होता है। इसकी विधि है. स्थूल ध्यान के बाद साधक मूलाधार में सर्पाकार कुंड़लिनी है, वहां दीप ज्योति के समान जीवात्मा विद्यमान है, वहां तेजोमय ब्रह्म का ध्यान करें जो परात्पर है या फिर भ्रुवों के मध्य और मन के ऊपर प्रणवात्मक जो तेज है, वही ज्वालावाली युक्त जो ध्यान है उसका ध्यान करें।

---

59 स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदु: । घेरण्य संहिता ६.१ पृ० ७६

60 स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तम्। वहीं।

61 ज्योतिस्तेजोमयं तथा। घे० सं० ६.१ पृ० ७६

3. सूक्ष्म ध्यान - यह ध्यान बिंदुमयब्रह्मा माना गया है जो कुंड़लिनी शक्ति से जागृत होता है।[62] योगी इसे शांभवी मुद्रा के ध्यान योग से सिद्ध करता है यह सूक्ष्म ध्यान देवों को भी दुर्लभ और गोपनीय है। स्थूल ध्यान से सौ गुना यह तेजो ध्यान कहा जाता है और तेजो ध्यान से लक्ष गुना, पर से भी पर यह सूक्ष्म ध्यान है।[63]

ध्यान करने में योगी को समय, स्थान, भावना, सहजता, शरीर शुद्धि, आसन, श्रद्धा, नियमितता आदि बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। योगियों ने नव मुख्य ध्यान स्थान कहे हैं . गुदा, मेढ़, हृत-पद्म, घण्टिका, लम्बिका का स्थान भौहों के मध्य व आकाश बिल। पंच तत्वों से युक्त ध्यान करने पर अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, ध्यान की महत्ता को स्पष्ट करते हुए आचार्य गोरक्षनाथ जी कहते है कि सहस्त्रों अश्वमेध व सैकड़ों वाजपेय यज्ञ एक ध्यान योग के 16 वें अंश के बराबर भी नहीं हैं।[64]

2.2 योग दर्शन में समाधि का स्वरूप

योग शब्द युज् धातु में घञ् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। युज् धातु यहाँ युज् समाधौ के अर्थ में प्रयुक्त है, इस प्रकार योग व्युत्पत्ति की दृष्टि से समाधि (समाधान) या चित्तवृत्ति निरोध हुआ, किंतु यहाँ **तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्** के अनुसार मोक्षप्रद चित्तवृत्ति निरोध ही योग है बाकी चित्तवृत्ति निरोध समाधि है। वैसे तो भारत का प्रत्येक दर्शन किसी न किसी रूप में समाधि की आवश्यकता पर बल देता है परंतु योग दर्शन में समाधि को एक अनुशासन के रूप में चित्रित किया गया है तथा ईश्वर को केवल समाधि योग का विषय माना गया है। समाधि की परिभाषाएँ इस प्रकार है.

१. मैत्रायणी उपनिषद् में समाधि के द्वारा चित्त की शुद्धि करके ही आत्मानुभूति का आनंद संभव बताया गया है.

"समाधि निर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं लभेत्।"

२. पाणिनि. युज सामाधौ।

---

62 सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डलीपरदेवता। वहीं।

63 स्थूलध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानं प्रचक्षते। तेजोध्यानाल्लक्षगुणं सूक्ष्मध्यानं परात्परम्। घे० सं० ६.२१ पृ० ८०

64 अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। एकस्य ध्यानयोगस्य तुलां नार्हन्ति षोडशम्। गो० प० २.८० पृ० ६२

३. याज्ञवल्क्य “समाधि: समतावस्था जीवात्मपरमात्मनो: । ब्रह्मण्येव स्थितिर्या सा समाधि: प्रत्यगात्मन:” ॥

४. पतंजलि. “तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधि” ३/३

समाधीर्नाम भावना! सा च भाव्यस्य विषयान्तर परिहारेण चेतसि पुन: पुनर्निवेशनम्।

५. “योग: समाधिरति”।

आचार्य पतञ्जलि के अनुसार योग समाधि है, किन्तु योग का अर्थ समाधि लेने पर एक शंका हो सकती है कि योग दर्शन में समाधि तो वैसे तो योग का अंग है और योग अंगी है। यह भी स्पष्ट है कि अंगी (योग) अंग (समाधि) नहीं बन सकता। इसलिए योग और समाधि में भेदज न देख पाने के कारण योग शब्द का अर्थ समाधि करना उचित नहीं लगता है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं कि योग का अर्थ समाधि तो व्युत्पत्तिपरक होने के कारण गौण अर्थ है, समाधि का सामान्य लक्षण तो चित्त की वृत्तियों का निरोध है।[65] यद्यपि वृत्तिनिरोध थोड़ा बहुत तो चित्त की क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त अवस्थाओं में भी होता है, किंतु वह चित्तवृत्तिनिरोध अर्थात समाधि योगसाधन के लिए बिल्कुल अनुपयोगी होती है। उस प्रकार के समाधि का ग्रहण योग दर्शन में नहीं करना चाहिए योग के लिए जिन समाधियों की उपयोगिता होती है, वे क्रमशः ये हैं.

योगांग रूपी समाधि. (ध्येय) अर्थमात्र को निर्भासित करने वाला अपने (ज्ञानात्मक) रूप से भी रहित सा ध्यान ही समाधि है[66] अर्थात् ध्यान ही जब ध्येय के स्वभाव का आवेश होने के कारण ध्येय के आकार से भासित तथा अपने (ज्ञानात्मक) रूप से रहित जैसा हो जाता है, उस समय उसे समाधि कहा जाता है।[67] इस प्रकार स्पष्ट है कि ध्यान के अतिरिक्त कोई वस्तु समाधि नहीं होती है, किंतु प्रत्येक ध्यान को समाधि नहीं समझना चाहिए जो ध्यान अर्थमात्र. निर्भासन एवं स्वरूपशून्यमिव इन दो विशेषताओं से युक्त हो वही समाधि कही जा सकती है। अर्थात जब ध्यान इन विशेषण वाला हो जाता है तो उसे समाधि कहते हैं।

---

[65] योगश्चित्तवृत्तिनिरोध: । पा० यो० १.२ पृ० ९

[66] तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि: । पा० यो० ३.३ पृ० ३२३

[67] ध्यानमेव ध्येयाकारनिर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिव यदा भवति ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते। पा० यो० भा० ३.३ पृ० ३२३

2.2.1. समाधि के प्रकार - योग के पर्याय के रूप में प्रसिद्ध समाधि योग दर्शन में दो प्रकार की कही गई है.

संप्रज्ञात समाधि. जब एकाग्र अवस्था में आए हुए चित्त में बाह्यविषय अर्थात प्रमाणादि वृत्तियों का निरोध हो जाए तब उसे संप्रज्ञात समाधि कहते हैं।[68] इसकी व्युत्पत्ति है कि जिसमें ध्येय वस्तु प्रकृति से पृथक रूप में अच्छी तरह प्रज्ञात हो अर्थात् जिसमें ज्ञान स्पष्ट हो संप्रज्ञात समाधि है। वितर्क, विचार, आनंद और अस्मिता का साक्षात्कारोदय होने से संप्रज्ञात समाधि होती है।[69] अपरवैराग्य इस समाधि का उपाय होता है। समाधि एक तरह की भावना है और इसका अभिप्राय है . भाव्यवस्तु (जिस वस्तु का चिंतन हो रहा हो वह वस्तु) को दूसरे विषयों से बचाकर चित्त में बार.बार बैठाना।[70] भव्य वस्तु के भी दो भेद है . ईश्वर और तत्त्वसमूह। तत्त्वसमूह दो प्रकार के हैं जड़ और अजड़। प्रकृति, महत्, अहंकारादि 24 जड़ पदार्थ हैं। पुरुष (जीवात्मा) अजड़ है। वितर्क आदि संप्रज्ञात समाधि के चार भेद है[71].

सवितर्क समाधि
सविचार समाधि
सानंद समाधि
सास्मिता समाधि

1. सवितर्क समाधि. वह है जब इन भाव्यवस्तुओं में से पृथ्वी आदि स्थूल पदार्थों को विषय के रूप में लेकर, पूर्व और अपर के क्रम का अनुसंधान करते हुए तथा शब्द और उनके अर्थ के उल्लेख की एकता दिखाते हुए कोई भावना प्रवृत्त होती है।[72] आलम्बन में चित्त की स्थूल (रूप की) परिपूर्णता वितर्क है।[73]

---

68 तत्रैकाग्रचेतसि य: प्रमाणादिवृत्तीनां बाह्यविषयाणां निरोध: स सम्प्रज्ञातसमाधि:। सर्वदर्शनसंग्रह पृ० ५८७

6969 वितर्कविचारानन्दाऽस्मितानुगमात्सप्रज्ञात:। पा० यो० १.१७, पृ० ६२

70 समाधिर्नामभावना। सा च भाव्यस्य विषयान्तरपरिहारेण चेतसि पुन:पुनर्निवेशनम्। सर्व० सं० पृ० ५८७

71 स चतुर्विध:। सवितर्कादिभेदात्। वहीं।

72 पृथिव्यादीनि स्थूलानि विषयत्वेनादाय पूर्वापरानुसन्धानेन शब्दार्थोल्लेखसम्भेदेन च भावना प्रवर्तते स समाधि: सवितर्क:। वहीं।

73 वितर्कश्चित्तस्यालम्बने स्थूल आभोग:। पा० यो० भा० १.१७ पृ० ६३

वितर्क रूप ध्येय का अर्थात् स्थूल पाञ्चभौतिक ध्येय का अनुगमन करने वाली अर्थात स्थूलध्येय में पूर्णतया तदाकाराकारित होनी वाली सात्त्विक वृत्ति के उदित होने पर वितर्कानुगतसंप्रज्ञात समाधि होती है। यह वितर्कादि चारों भागों से अनुगत या युक्त रहती है।

2. सविचार समाधि - सूक्ष्म (रूप की परिपूर्णता) सविचार है।[74] सविचार समाधि वह समाधि है जब तन्मात्र (रूप ,रस आदि) तथा अंतः करण, इन सूक्ष्म पदार्थों को विषय बनाकर देश, कालादि (निमित्त) के विचार से मिलाकर भावना उत्पन्न हुई हो।[75] वितर्क रहित तथा शेष तीनों से अनुगत विचारानुगत संप्रज्ञात समाधि होती है।

3. सानंद समाधि - अह्ललाद (रूप की परिपूर्णता) आनंद है।[76] जब रजोगुण और तमोगुण के लेश मात्र अंश से युक्त चित्त की भावना की जाती है तब सुख और प्रकाश से निर्मित सत्त्व का उद्रेक होता है. यही सानंद समाधि है।[77] यह वितर्क एवं विचार से रहित तथा आनंद एवं अस्मिता से युक्त होती हैं।

4. सास्मिता समाधि - पुरुष तथा बुद्धि की एकाकार बुद्धि (रूप की परिपूर्णता) अस्मिता है।[78] जब रजोगुण और तमोगुण का लेश भी न रहे, वैसे शुद्ध सत्त्वगुण पर आधारित होकर भावना उत्पन्न हो तब उस सत्त्व के भी दब जाने से तथा चिति . शक्ति की उद्रेक से केवल सत्ता का ही बचा रह जाना सास्मित समाधि है।[79] यह वितर्क, विचार एवं आनंद से रहित केवल अस्मितानुगत होती है। इस समाधि में ईश्वर स्वरूप तथा जीवात्मा दोनों को जड़ से पृथक् करके देखते हैं। अहमस्मि केवल यही आकार बचा रहता है। पहले जीवात्मा के विषय की अस्मिता होती है। उसके बाद उससे भी सूक्ष्म अस्मिता परमात्मा के विषय में होती है। यही चित्त कि अंतिम भूमि है। इसके बाद कोई ज्ञेय विषय रहता ही नहीं। ये सभी समाधियाँ सालंबन होती हैं।

---

74 सूक्ष्मो विचारः। पा० यो० भा० १.१७, पृ० ६३

75 यदा तन्मात्रान्तःकरणलक्षणं सूक्ष्मं विषयमालम्ब्य देशाद्यवच्छेदेन भावना प्रवर्तते तदा सविचारः। सर्वदर्शनसंग्रह पृ० ५८७

76 आनन्दो ह्लादः। पा० यो० भा० १.१७ पृ० ६३

77 यदा रजस्तमोलेशानुविद्धं चित्त भाव्यते तदा सुखप्रकाशमयस्य सत्त्वस्योद्रेकात्सानान्दः। सर्व० सं० पृ० ५८८

78 एकात्मिका संविदस्मिता। पा० यो० भा० १.१७, पृ० ६३

79 यदा रजस्तमोलेशानभिभूतं शुद्धं सत्त्वमालम्बनीकृत्य या प्रवर्तते भावना तदा तस्यां सत्तवस्य न्यग्भावाच्चितिशक्तेरुद्रेकाच्च सत्तामात्रावशेषत्वेन सास्मितः समाधिः। सर्व० सं० पृ० ५८८

धर्ममेघसमाधि. यहां यह ध्यान देने योग्य है कि परवैराग्य का निरूपण करते समय भाष्य़कार ने समाधिपाद के दूसरे और सोलहवें सूत्र के भाष्य में स्पष्ट किया है कि विवेकाख्याति के प्रति विरक्त होना परवैराग्य है। किन्तु धर्ममेघ समाधि में विवेकाख्याति के वैराग्य न होकर, विवेकाख्याति से प्राप्त सर्वज्ञत्व और सर्वभावाधिष्ठातृत्व नाम की अवान्तर सिद्धियों के प्रति वैराग्य होता है। और यह वैराग्य पर नही अपितु ऐश्वर्य के प्रति होने वाला अपर वैराग्य है। इसीलिए धर्ममेघसमाधि को विज्ञानभिक्षु ने सम्प्रज्ञातसमाधि की अन्तिम सीमा के रूप में वर्णित किया है।[80] विवेकाख्याति में वीतराग योगी को सर्वथा विवेकख्याति होने से धर्ममेंघसमाधि होती।[81] जब योगी विवेकाख्याति में भी वीतराग रहता है अर्थात उससे भी कोई कामना नहीं करता, तब उसमें भी रागहीन उसको सब प्रकार से विवेकाख्याति होती रहती है। इसलिए (व्युत्थान) संस्कार के बीजों का दाह हो जाने से इसको (विवेकाख्याति) भिन्न (लौकिक) ज्ञान नहीं प्रादुर्भूत होते । तब इसे धर्ममेघ समाधि सिद्ध होती है।

असंप्रज्ञात समाधि. जब सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है तब वह असंप्रज्ञात समाधि कहलाती है।[82] यहां यह ध्यान देने योग्य है कि निरोध का अर्थ सभी मात्र वृत्तियों का निरोध ही नहीं है प्रत्युत क्लेशादि के विनाश से भी है जैसा कि संप्रज्ञात समाधि में होता है अतः यह चित्तवृत्ति निरोध तो हुआ ही है। परवैराग्य के अभ्यास पूर्वक तथा (निरोध) संस्कारमात्रावशिष्ट (चित्त वाली) समाधि संप्रज्ञात समाधि से भिन्न असंप्रज्ञात समाधि कही जाती है।[83] असंप्रज्ञात समाधि दो प्रकार की होती है[84].

१. उपाय प्रत्यय . उपायों से सिद्ध होने वाली अर्थात उपायकारणक उपायप्रत्ययासंप्रज्ञात समाधि होती है।[85] यह समाधि योगियों को श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा पूर्वक होती है।

२.भव प्रत्यय. यह असंप्रज्ञात समाधि विदेहों तथा प्रकृतिलीनों को होती है।[86]

---

[80] धर्ममेघनाम्नी सम्प्रज्ञातयोगस्य पराकाष्ठा भवतीत्यर्थः। योगवार्तिक पृ० ४५५

[81] प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः। पा० यो० ४.२९ पृ० ५८२

[82] सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसम्प्रज्ञातः समाधिः। सर्व० सं० पृ० ५८९

[83] विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारोशेषोऽन्यः। पा० यो० १.१८, पृ०६६

[84] स खल्वयं द्विविध;-उपायप्रत्ययो भवप्रत्ययश्च। पा० यो० १.१९ पृ० ६८

[85] तत्रोपायप्रत्ययो योगिनां भवति। वहीं

[86] भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्। वहीं

इन समाधियों का पारस्परिक भेद भी ज्ञातव्य है। अंग भूत योगांगरुपिणी समाधि में ध्येय पदार्थ का ध्येयमान आकार ही निर्भासित होता रहता है। इसमें सम्यकप्रज्ञान रूप सिद्धि ना होने के कारण ध्येय पदार्थ अपने सकल विशेषों सहित ज्ञात नहीं होता किंतु अंगीभूत संप्रज्ञात समाधि में संप्रज्ञान या साक्षात्कार का उदय हो जाने के कारण ध्येय पदार्थ के ध्यायमान तथा अध्यायमान दोनों प्रकार के विशेष संपूर्ण रूप में स्वत:निर्भासित होने लगते हैं। तात्पर्य यह है कि संप्रज्ञान या साक्षात्कार से युक्त एकाग्र वृत्तिक समाधि तो अंगी संप्रज्ञात समाधि होती है और संप्रज्ञानहीन एकाग्र वृत्तिक समाधि अंगभूत समाधि होती हैं। असंप्रज्ञात समाधि इन दोनों समाधियों से भिन्न रूप की होती है, क्योंकि उसमें कोई ध्येयविषय ही नहीं होता और ना ही किसी प्रकार का ज्ञान होता है। अतः उसका भेद इन दोनों समाधियों से सर्वथा सुस्पष्ट ही है।

सिद्धसिद्धान्तपद्धति में कहा गया है कि साधक के अन्त:करण की सभी तत्त्वों के प्रति एक समान सी तटस्थ अवास्था, निरुदयोग, अनायास (परिश्रमरहित) ऐसी स्वाभाविक सहज स्थिति ही समाधि का लक्षण है।[87] गोरक्ष पद्धति में और स्पष्ट रूप से गुरु गोरक्षनाथ द्वारा समाधि की परिभाषा तथा उसकी महत्ता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब समस्त द्वन्द एक हो जाएं, जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाए और समस्त प्रकार के संकल्प नष्ट हो जाएं तो वह काल समाधि कहलाता है।[88] जिस प्रकार नमक जल में मिल जाता है उसी प्रकार जब जीव परमात्मा में मिल जाए तो उस अवस्था को समाधि कहते हैं। या प्राण की लीन होने से मन का भी लीन हो जाना व उसके द्वारा प्राप्त समावस्था ही समाधि कहीं जाती हैं। समाधि में लीन योगी को न गन्ध, न रस, न रूप, न स्पर्श, न ध्वनि, न अपना और न पराया समझ में आता है तथा समाधि में लीन साधक को कोई शस्त्र भेद नहीं सकता है, न कोई भी जीव हिंसा कर सकता वह मंत्र व यंत्र द्वारा भी अप्राप्य होता है।

---

[87] सर्वतत्त्वानां समावास्था,निरूद्यमत्त्वम,अनायासस्थितिमत्त्वम-इति समाधिलक्षणम्। सि० सि० प० २.३९ पृ० ४३

[88] यत्सर्वं द्वन्द्वयोरैक्यं जीवात्मपरमात्मनो:।
समस्तनष्टसंकल्प: समाधि: साभिधीयते॥ गो० प० २.८५ पृ० ६३

<u>तृतीय अध्याय</u>

बौद्ध दर्शन में वर्णित साधना पद्धति

भारतीय ज्ञान परम्परा में साधना की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित है। इन सभी पद्धतियों का परम लक्ष्य जीव को उसके अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति कराना रहा है। चूंकि साधना आत्मोन्नति की आधारशिला है। इसलिए मुख्यत: साधना करने की तीन पद्धतियाँ बतायी गयी हैं . कर्म, ज्ञान और भक्ति। महात्मा बुद्ध के अनुसार व्यक्ति बिना शरीर को दण्ड दिए ज्ञान प्राप्तकर और ध्यान साधना के अभ्यास से निर्वाण प्राप्त कर सकता है। बौद्ध साधनाएं शील, समाधि और प्रज्ञा के रूप में त्रिरत्न के नाम से जानी जाती हैं। इनमें शील बौद्ध साधनाभ्यास की आधारभूत नींव है, क्योंकि बौद्ध साधना के अन्तर्गत शील से युक्त साधक ही समाधि का अधिकारी होता है। बौद्ध साधना पद्धति हीनयान और महायान के रूप में अपनी भिन्न.भिन्न विशिष्टताओं को प्रकट करती है। जहाँ हीनयान केवल निवृत्ति मार्गी है और इसकी सारी शिक्षा, समग्र साधना केवल एक आत्मा के निर्वाण को मात्र उद्देश्य बनाती हैं। वहीं महायान प्रवृत्ति मार्गी है जिसका लक्ष्य सर्वजन को आत्मोन्नति के योग्य बनाना है। हीनयान ज्ञान को प्रधानता देता है और महायान भक्तिपूर्वक बुद्ध की मूर्ति.पूजा, अर्चना को स्थान देता है। सम्पूर्ण बौद्ध साधना पद्धति में चित्तवृत्तियों के सयंमन तथा नियंत्रण के बिना अमृत पद निर्वाण को प्राप्त करना असंभव बताया गया है। और इसी साधना पद्धति में अष्टांगिक मार्ग के अभ्यास से ही चित्तवृत्तियों के दमन का मार्ग भी बताया गया है। बौद्ध दर्शन के अनुसार जीवन दु:खमय है किन्तु शील के आचरण से इन अवांछित दु:खों को उत्पन्न होने से रोका जा सकता है। साधनाएं ही दु:ख निरोध में सहायक होती हैं। क्योंकि मनुष्य मात्र में देवत्व विद्यमान है जिसे साधना द्वारा ही परिष्कृत किया जा सकता है।

बौद्ध दर्शन की साधना पद्धति का प्रारंभ महात्मा बुद्ध द्वारा उपदिष्ट चार आर्य सत्यों (दु:ख, दु:ख समुदय, दु:ख निरोध, दु:ख निरोधगामिनीप्रतिपदा) से प्रारंभ होता है और ये चारो आर्य सत्य क्रमश: प्रवृत्ति, प्रवर्तन, निवृत्ति एवं निवर्तन लक्षण वाले हैं। तथा

संस्कृत, तृष्णा, असंस्कृत एवं दर्शन लक्षण वाले हैं।[89] विसुद्धिमग्गो[90] एवं मज्झिम निकाय[91] में आर्य चतुष्टय की महत्ता का वर्णन इस प्रकार मिलता है।

3.1 आर्य चतुष्टय

दु:ख
दु:ख.समुदय
दु:ख निरोध
दु:ख निरोध मार्ग

3.1.1 दु:ख - आचार्य बुद्ध घोष के अनुसार यहाँ **दु** शब्द (उपसर्ग) कुत्सा अर्थात निन्दा अर्थ में तथा **ख** शब्द तुच्छ (हीन . रहित) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अत: कुत्सित और तुच्छ होने से यह दु:ख कहा जाता है।[92] बुद्ध के अनुसार संसार दु:खमय है। जन्म लेना दु:खमय है, मृत्यु होना दु:खमय है, विकार होना दु:खमय है, अप्रिय वस्तु से संयोग दु:खमय है, प्रिय वस्तु से वियोग दु:खमय है। अन्तत: कहें तो रोग से जन्य पंचस्कंध[93] (शरीर, अनुभूति, प्रत्यक्ष, इच्छा और विचार) दु:खमय है। संसार में जिन वस्तुओं से सुखात्मक अनुभूति प्राप्त होती है, उसको प्राप्त करनें में दु:ख है। और यदि वह वस्तु मिल भी गयी तो उस वस्तु के मिल जाने पर भी उस वस्तु के खो जाने का भय और चिंता होना भी दु:खमय है। इसलिए कहा गया है कि प्रेम या सुख से शोक एवं भय उत्पन्न होता है।[94] इन्द्रिय सुख के विषयों के खो जाने से भी विशाद उत्पन्न होता है। बुद्ध का कथन है कि दुनिया में दु:खियों ने जितनी आंसू बहाए हैं उनका पानी महासागर

---

[89] अपि च पवति-पवत्तन-निवत्तनलक्खणानि पटिपाटिया।तथा सङ्खततण्हा-असङ्खत-दस्सनलक्खणानि चा ति॥ विसु० १६.२ पृ० १००

[90] चत्तारि अरियसच्चानि-दुक्खं अरियसच्चं, दुक्खसमुदयो अरियसच्चं,दुक्खनिरोधो अरियसच्चं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं ति। विसु० १६.२ पृ० ९७ ।

[91] दुक्खे अरियसच्चे, दुक्खसमुदये अरियसच्चे, दुक्खनिरोधे अरियसच्चे, दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय अरियसच्चे। म०नि० १.३.८

[92] ’दु’-इति अयं सद्दो कुच्छिते दिस्सति-खं-सद्दो पन तुच्छे।’...तस्मा कुच्छितत्ता तुच्छत्ता च दुक्खं ति वुच्चति। विसु० १६.२ पृ० ९८

[93] मज्झिमनिकाय १:५:४ ।

[94]पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयम्। धम्मपद २१३

में जितना जल है उससे भी अधिक है।[95] जैसे अग्नि का काम जलाना है उसी प्रकार दु:ख का स्वभाव कष्ट या पीड़ा देना है। बुद्धघोष ने दु:ख के अनेक भेद किए हैं[96] . दु:खदु:ख, विपरिणामदु:ख, संस्कारदु:ख, प्रतिच्छिन्नदु:ख, अप्रतिच्छिन्नदु:ख, पर्यायदु:ख और निष्पर्यायदु:ख।

3.1.2. दु:ख.समुदय: - **'सम'** यह शब्द =समागम [सं+आगम], एवं **समेत** [सं+एत] आदि शब्दों में संयोग अर्थ का बोधक है तथा **उ** शब्द उत्पत्ति अर्थ में और **अय्** शब्द (धातु) कारण अर्थ में यहाँ प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार दु:ख की उत्पत्ति में कारण होने से दु:खसमुदय कहा गया है।[97] भारतीय ज्ञानपरम्परा की अपनी अन्यतम् विशिष्टता रही है कि सभी भारतीय दार्शनिक संसार को दु:खमय जानकर इन दु:खों के मूलकारण को जानने और समझने के लिए प्रयासरत रहते है। महात्मा बुद्ध भी इस परम्परा का निर्वहन करते है वे इस दु:ख के कारण का विश्लेषण अपने द्वितीय आर्य सत्य में प्रतीत्यसमुत्पाद [कार्य कारण] सिद्धांत के माध्यम से करते हैं .

3.1.2.1 प्रतीत्यसमुत्पाद -

अभिधम्मत्थसंग्गहो में कहा गया है कि "जो प्रत्यय समूह प्रत्यय सामग्री की अपेक्षा करके साथ.साथ प्रत्ययोत्पन्न धर्मों का उत्पाद करता है वह प्रत्यय समूह ही प्रतीत्यसमुत्पाद है।"[98] चूंकि सभी संस्कृत धर्म प्रतीत्यसमुत्पाद है।[99] इसलिए मज्झिमनिकाय में महात्मा बुद्ध कहते हैं जो प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञाता है वह धर्म का ज्ञाता है जो धर्म का ज्ञाता है वह प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञाता है।[100] बौद्ध दर्शन में दु:ख को जरा.मरण कहा गया है,

---

95 सयुत्तनिकाय ३.२५

96 अनेकानि हि दुक्खानि।सेय्यथीदं दुक्खदुक्खं, विपरिणामदुक्खं, सङ्खारदुक्खं, पटिच्छन्नदुक्खं, अप्पटिच्छन्दुक्खं,परियायदुक्खं,निप्परियादुक्खमिति।
विसु० १६.२.१ पृ० १०६

97 सं इति च अयं सद्दो समागमो समेतं ति आदीसु संयोगं दीपेति। उ इति अयं उत्पन्नं उदितं। अय सद्दो कारणं दीपेति। इति दुक्खस्स संयोगे उपपित्तिकारणत्ता दुक्खसमुदयं ति वुच्चति। विसु० १६.२ पृ० ९८, दीर्घनिकाय २-५३४, विभ० २३७

98 पच्चयसामग्गि पटिच्च समं सह च पच्चुप्पन्नधम्मे उप्पादेतीति पटिच्चसमुप्पादो। अभिधम्मत्थसङ्गहो पृ० ८०८

99 सर्वे संस्कृता धर्मा: प्रतीत्यसमुत्पाद:। अभिधर्मकोश् ३.२७,पृ० ४४८

100 मज्झिमनिकाय २२

जरा.मरण का कारण जाति, जाति का कारण भव, भव का कारण उपादान, उपादान का कारण तृष्णा, तृष्णा का कारण वेदना, वेदना का कारण स्पर्श, स्पर्श का कारण षडायतन, षडायतन का कारण नामरूप, नामरूप का कारण विज्ञान, विज्ञान का कारण संस्कार, संस्कार का कारण अविद्या है। इन्हें प्रतीत्यसमुत्पादचक्र या द्वदशाङ्क चक्र भी कहते हैं। इनमें प्रथम चक्र जरा मरण है और अविद्या अंतिम चक्र तथा शेष कड़ियों का स्थान मध्य में आता है। इनमें अविद्या और संस्कार का संबंध भूतकाल से तथा जाति और जरा मरण का संबंध भविष्यत्काल से है। शेष का संबंध वर्तमान जीवन से है। इस चक्र को हम चित्र के माध्यम से भी समझ सकते है .

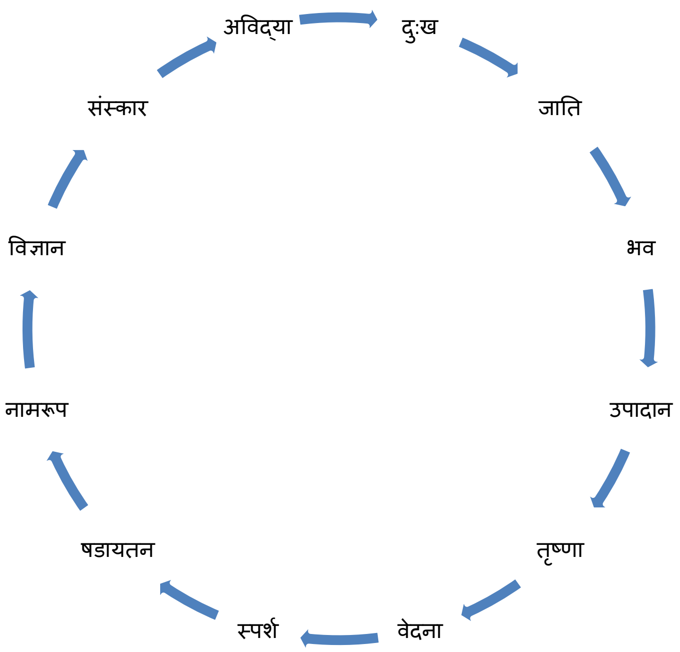

3.1.3 दु:ख निरोध - इसमें **नि = अभाव अर्थ को, रोध=बन्धनागार अर्थ** को द्योतित करता है। इस प्रकार यहाँ दु:ख निरोध का अर्थ हुआ दु:ख के सभी बंधनो का अभाव अर्थात संसार रुप बन्धनागार कहे जाने वाले दु:ख की सभी गतियों के शून्य हो जाना, दु:ख का अभाव अर्थ है।[101] दूसरे आर्यसत्य में कहा गया कि दु:ख का कारण है इससे यह सिद्ध होता है कि यदि दु:ख के कारण का नाश हो जाता है तो दु;ख का नाश भी हो

[101] ततियं सच्चं पन यस्मा नि-सद्दो अभावं, रोध-सद्दो च चारकं दीपेति,तस्मा अभावो एत्थ संसारचारकसङ्खातस्स दुक्खरोधस्स सब्बगतिसुञ्ञत्ता। विसु० १६.२ पृ० ९८

जायेगा यही तृतीय आर्य सत्य दु:ख निरोध है जिसमें निर्वाण की विशेषताओं का उल्लेख है। दु:ख का कारण तृष्णा है तृष्णा से नि:शेष, वैराग्य, त्याग, परित्याग, उससे मुक्ति, अनासक्ति होना ही दु:ख निरोध आर्य सत्य है।[102] बौद्ध दर्शन के कुछ अनुयायी जीवन.मुक्ति और विदेह.मुक्ति की तरह निर्वाण (जीवन काल में ही प्राप्य) और परिनिर्वाण (मृत्यु के उपरान्त प्राप्त) में भेद करते हैं। निर्वाण प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को सभी कर्मों का त्याग कर बुद्ध के चार आर्य सत्यों का मनन करना पड़ता है। बुद्ध ने दो प्रकार के कर्म माने हैं.

आसक्त कर्म . जो राग द्वेष तथा मोह से संचालित होता है इसकी तुलना बुद्ध ने उत्पादक बीज से की है। जिसके वपन से दु:खरूपी पौधे की उत्पत्ति होती है।

अनासक्त कर्म . जो राग, द्वेश एवं मोह से रहित होकर तथा संसार को अनित्य समझकर किया जाता है। यह कर्म भूंजे हुए बीज की भांति होता है जो दु:खरूपी पौधे की उत्पत्ति में असमर्थ होता है। दु:ख निरोध को बुद्ध ने निर्वाण कहा है और निर्वाण ही बौद्ध धर्म का मूल आधार है। यथार्थ निर्वाण को ही परमसुख कहा गया है।[103]

3.1.4. दु:ख निरोध मार्ग - तीसरे आर्य सत्य में तथागत ने कहा कि दु:ख का निरोध संभव है। लेकिन सवाल उत्पन्न होता है कि यह दु:ख निरोध संभव कैसे है? इसी प्रश्न का उत्तर, बुद्ध ने चतुर्थ आर्य सत्य में दु:ख निरोध के लिए दु:ख निरोध गामिनी प्रतिपद मार्ग के रूप में दिया है। इसे ही दु:ख निरोध मार्ग कहा गया है। सम्यक प्रतिपादन करने से प्रतिपद कहलाती हैं।[104] अचार्य बुद्धघोष ने भी कहां है की दुख निरोध मार्ग से ही निर्वाण तक पहुँचा जा सकता है इसलिए इसे दु:ख निरोध गामिनी प्रतिपदा कहते हैं।[105] बुद्ध कहते हैं हे भिक्खुओ ! दु:ख निरोध में सहायक ये आर्य अष्टांग मार्ग है। दीघनिकाय के संगीतिसूत्र मे गणित आठ मिथ्या आचरणों . मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासंकल्प,

---

102 यो तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधो चागो पटिनिस्सगो मुत्ति अनालयो। विसु० १६.३१ पृ० ३४८, म० नि० १.४९ पृ० ६५०

103 यथाभूतं निब्बाणं परमं सुखम्। धम्मपद २०३ ।

104 सम्यक प्रतिपादनार्थेन प्रतित्। अभि०को०भा०, पृ ४००

105 यस्मा एतं दुक्खनिरोधं गच्छति आरम्मणावसेन तदभिमुखभूतता पटिपदा च हाति दुक्खनिरोधप्पत्तिया तस्मा दुक्खनिरोधगामिपटिपदा ति वुच्चति। विसु० १६.१९ पृ० ९९

मिथ्यावाक, मिथ्याकर्मान्त, मिथ्याआजीव, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति, मिथ्यासमाधि[106] के प्रतिपक्षीभूत आठ सदाचारों (अष्टांगिक मार्ग) का वर्णन भी दीघनिकाय में मिलता है[107] जिनका विवरण अग्रलिखित है .

3.1.4.1. अष्टाङ्गिक मार्ग –

सम्यक् दृष्टि
सम्यक् संकल्प
सम्यक् वाक्
सम्यक् कर्मान्
सम्यक् आजीव
सम्यक् व्यायाम
सम्यक् स्मृति
सम्यक् समाधि

सम्यक् दृष्टि - महात्मा बुद्ध ने अविद्या को दु:ख का आधारभूत कारण बताया है। इस अविद्या के कारण ही मिथ्या दृष्टि उत्पन्न होती है। मिथ्या दृष्टि के प्रभाव में आकर जीव अवास्तविक वस्तु को वास्तविक समझने लगता है तथा अनात्म को आत्मा मानने लगता है। फिर इसी गलत दृष्टि के कारण मनुष्य नश्वर विश्व को अनश्वर तथा दु:खमय अनुभूतियों को सुखमय जानकर जीने लगता है। इस मिथ्यादृष्टि का अंत सम्यक दृष्टि से ही संभव है। इसलिए बुद्ध ने सम्यक् दृष्टि को अष्टांगिक मार्ग के प्रथम सीढ़ी माना है जो वस्तु जैसी है उसे उसी स्वरूप में देखना.समझना सम्यक दृष्टि है। इस प्रकार बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान ही सम्यक् दृष्टि है।[108] इन आर्य सत्यों का सम्यक ज्ञान मानव को निर्वाण की ओर ले जाता है। यह शुद्ध दृष्टि, निर्मल प्रज्ञा है। इसे अनेक

---

106 दीघ नि० ३.२४५ पृ० १९६

107 भिक्खवे - पटिपदा अरियसच्चं? अयमेव अरियो अट्ठंङिगको मग्गो सेय्यथिदं सम्मादिट्ठि सम्मासङकप्पो सम्मावाचा सम्माकम्मन्तो सम्माआजीवो सम्मावायामो सम्मासति सम्मासमाधि। दी० नि० २.९

108 कतमा च भिक्खवे सम्मादिट्ठि? यं खो भिक्खवे दुक्खे ञाणं दुक्खसमुदये ञाणं, दुक्खनिरोधे ञाणं दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय ञाणं अयं वुच्चति भिक्खवे सम्मादिट्ठि। दी० नि० २.३१२ पृ० २३३, म० नि० १.४९

नामों से जाना जाता है।[109] सम्यक् दृष्टि वाला ही इस बात को समझता है की यह लोक है, परलोक है, माता है ,पिता है, इष्टानिष्ट है और सुकृत्.दुष्कत् कर्मो का विपाक है|[110]

सम्यक् संकल्प - सर्वप्रथम सम्यक् दृष्टि सम्यक् संकल्प में परिवर्तित होती है। तथागत द्वारा बताये गये चारों आर्य सत्यों का जीव द्वारा जीवन में पालन करने का दृढ़ निश्चय ही सम्यक् संकल्प है। निर्वाण के आदर्श को अपनाने के लिए एक साधक को इन्द्रिय विषयों से अलग रहने, अहिंसा, सत्य, अस्तेय का दृढ़ संकल्प होकर पालन करना चाहिए। मिथ्या संकल्प का प्रति पक्षी ही सम्यक् संकल्प होता है।[111] जिन संकल्पों से शील, समाधि, प्रज्ञा एवं विमुक्ति ज्ञान का दर्शन हो ऐसे संकल्पों का संकल्प करना सम्यक संकल्प कहलाता है।[112] सम्यक् संकल्प का परम उद्देश्य निर्वाण लाभ की प्राप्ति है।[113] यह संकल्प तीन प्रकार का होता है .

प्रथम नेक्खम्म सम्यक् संकल्प = नैष्क्रम्यभिमुख होना अर्थात कामनाओं से रहित होना।

दूसरा अव्यापाद सम्यक् संकल्प = घृणा न करना।

तीसरा अविहिंसा सम्यक् संकल्प = हिंसा से रहित होना।

सम्यक् वाक् - सम्यक् संकल्प की अभिव्यक्ति अथवा उसके बाह्यतम् भाग रूप में सम्यक् वाक् को समझा जा सकता है। यह माना जाता है कि निरंतर सत्य एवं प्रिय बोलने वाला व्यक्ति ही सम्यक् वाक् का पालन करने में समर्थ हो सकता है। किन्तु केवल सत्य वचनों का प्रयोग ही सम्यक् वाक् के लिए पर्याप्त नही है। जिस वचन से दूसरो को कष्ट हो ऐसे वचनों का प्रयोग न करना भी जरूरी है। इस प्रकार सत्य एवं प्रिय वचनों का प्रयोग ही सम्यक् वाक् माना गया है। अत: असत्य न बोलना, चुगली न करना, क्लिष्ट

---

109 या पञ्ञा पजानना विचयो प्रविचयो धम्मविचयो.........अयं वुच्चति सम्मा दिटिठ। बिभंग १०६ पृ० १३६

110 तत्र भिक्षव: सम्यक दृष्टि कतमा ? अस्त्यं लोक: ।अस्ति परलोक:। अस्ति माता। अस्ति पिता। अस्ति दत्तम। अस्ति हुतम। अस्ति इष्टानिष्टसुकृतदुष्कृतानां कर्मणां फलविपाक:। सन्ति लोके सम्यग्गता:,सम्यक्प्रतिपन्ना इति। इयं भिक्षव: सम्यग्दृष्टि:। अर्थविनिश्चयसूत्र पृ० ३५

111 तथासम्पन्नदिटिठ्नो तं सम्पयुक्तं मिच्छासंकप्पविघातकम् । विभंग अट्ठकथा, पृ० ११५-११७

112 यै: संकल्पै: शीलसमाधिप्रग्याविमुक्तिग्यानदर्शनस्कन्धा: समुतिष्ठन्ति, तान संकल्पान संकल्पयति। अयमुच्यते सम्यक्संकल्प:। अर्थविनिश्चयसूत्र पृ० ३२१

113 चेतसो निब्बाणपदाभिनिरोपनं सम्मासंकप्पो। विसु० १६.७७

वाणी के प्रयोग बचना, अनर्गल वार्तालप न करना ही सम्यक् वाक् है।[114] परनिंदा करना आवश्यकता से अधिक बोलना सम्यक् वाक् का विरोध करने जैसा है। कहा भी गया है पारूष्य, अनृत, पैशुन्य एवं सम्भिन्नप्रलाप से वर्जित वचन ही सम्यक् वाक् है।[115]

सम्यक् कर्मान्त - बौद्ध दर्शन में यह भी कहा गया है कि साधक को निर्वाण प्राप्ति के लिए सिर्फ सम्यक् वाक का पालन करना ही जरूरी नहीं हैं क्योकि सत्यभाषी और प्रिय भाषी होने के बावजूद कोई व्यक्ति बुरे कर्मों को अपनाकर पथभ्रष्ट हो सकता है जैसा आज के समय में प्राय: देखा जाता है। इसलिए बुद्ध ने सम्यक् कर्मान्त के पालन करने को कहा। सम्यक् कर्मान्त का अर्थ है बुरे कर्मों का परित्याग। तथागत के अनुसार बुरे कर्म तीन हैं हिंसा, स्तेय, इंद्रिय भोग। सम्यक् कर्मान्त इन तीनों कर्मों के प्रतिकूल होता है अर्थात्

अहिंसा - अर्थात जीव हिंसा नहीं करना।

अस्तेय - परसंपत्ति को नहीं चुराना।

इंद्रिय संयम - अर्थात इंद्रिय सुख का त्याग करना। इन्हें ही सम्यक् कर्मान्त कहा जाता है।[116]

अर्थविनिश्चयसूत्र में दश कुशल कर्मपथों में काया, वाणी एवं मन के व्यापार को सम्यक् कर्मान्त कहा गया है।[117] सूत्र में उल्लिखित 10 कुशल कर्मों को शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक के अन्तर्गत परिगणित किया गया है.

कायिक कर्म - प्राणातिपात, अद्त्तादान, काममिथ्याचार।

वाचिक् कर्म - पारूष्य, अनृत, पैशुन्य और सम्भिन्नप्रला।

मानसिक कर्म - अभिधा, व्यापाद और मिथ्याद्दष्ट।

इन तीन प्रकार के कर्मों से विरत होना ही सम्यक् कर्मान्त है।

---

114 मुसावाद वेरमणी पिसुणाय वाचाय वेरमणी फरुसाय वाचाय वेरमणी सम्फप्पलाय वेरमणी अयं वुच्चति भिक्खवे सम्मावाचा। दी० नि० २.३१२, पृ० २३३

115 इह भिक्षव: पारुष्यानृतपैशुन्यसम्भिन्नप्रलापवर्जिता वाक सम्यग्वाक्। अर्थविनिश्यचयसूत्र पृ० ३५

116 पाणातिपाता वेरमणी, अदिन्नादाना वेरमणी,कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी, अयं वुच्चति सम्माकम्मन्तो। दी०नि० २.३१२ पृ० २३३

117 कायवाङ्नसां दशकुशलेषु कर्मपथेषु व्यापार:। अर्थविसु० पृ० ३६

सम्यक् आजीव - सम्यक् आजीविका अर्थात ईमानदारी पूर्वक जीवन निर्वाह या जीविकोपार्जन करना। जीविका के निर्वहन का ढंग उचित होना चाहिए। क्योंकि निर्वाण को प्राप्त करने के लिए कटु वचन तथा बुरे कर्मों के परित्याग के साथ.साथ जीवन निर्वहन के लिए अशुभ पथ का परित्याग भी परम आवश्यक है अर्थात जीवन निर्वाह के लिए प्राणी जो अजीविका अपनाता है वह अच्छी हो, प्रशस्त हो यही सम्यक् आजीविका कहलाती हैं।[118] सम्यक् आजीविका को दो भागों में बांटा गया है.

1. उपासको के लिए सम्यक् आजीव - सत्त्व-विक्रय से विरत रहना तथा शस्त्र, विष, मांस मद्यादि से भी विरत रहना एवं बिना देखे हुए तिल, सर्षपपीड़न से भी विरत रहना उपासक के लिए सम्यक् आजीव है।[119]

2. भिक्षुओं के लिए सम्यक् आजीव - कुहना, लपना, नैमित्तिकत्त्व, नैष्पेषिकत्त्व और लाभ से लाभ की प्रतिकांक्षा न रखना भिक्षुओं के लिए सम्यक् आजीव है।[120] सम्यक् आजीविका को सम्यक् कर्मान्त से अलग सीढ़ी इसलिए माना गया क्योकि सम्यक् कर्मान्त का पालन करने वाला प्राणी कभी.कभी जीवन निर्वाह के लिए अनुचित मार्गों को भी प्रयोग में लाता है। अत: सम्यक् कर्मान्त की सार्थकता के लिए सम्यक् आजीविका का पालन आवश्यक बताया गया है।

सम्यक् व्यायाम - चूंकि उपर्युक्त 5 मार्गों पर चल कर भी कोई साधक निर्वाण प्राप्त करने में असफल हो सकता है। इसका मुख्य कारण ये है कि हमारे मन में पुराने बुरे विचार अपना घर बना चुके हैं तथा नये बुरे विचार सतत मन में प्रवाहित होते रहते हैं इसलिए पुराने बुरे विचारों को मन से बाहर करना और नवीन बुरे विचारों को मन में आने से रोकना अति आवश्यक हो जाता है। अंगुत्तर निकाय में सम्यक् व्यायाम चार प्रकार का बताया गया[121].

संवर. पुराने बुरे विचारों को मन से बाहर निकाल फेकना।

प्रहाण. नए बुरे विचारों को मन में आगमन करने से रोकना।

---

118 सुन्दरो पसत्थो वा आजीवो सम्मा आजीवो। अट्ठसालिनी ३.४७२, पृ० १७७

119 इह खलु भिक्षव: उपासकस्य मिथ्याजीव:। विषयिक्रय:, शस्त्रविक्रय:, सत्त्वविक्रय:, मद्यविक्रय:, मांसविक्रय: अप्रत्यवेक्षिततिलसर्षपपीडन मिथ्याजीव:। अर्थविसू० पृ० ४०

120 भिक्षोस्तावत कुहना लपना नैमितिकत्त्वं नैष्पेषिकत्त्वं लाभेन लाभप्रतिकांक्षा च। अर्थविसू० पृ० ३९

121 अंगुत्तरनिकाय २.१६ पृ० १८-१९

भावना. सुविचार एवं सात्त्विक भावों को मन में भरना।
अनुरक्षण. इन सुविचारों एवं सात्त्विक भावों को अन्त:करण में बनाये रखने के लिए निरन्तर क्रियाशील रहना तथा उनका अनुरक्षण करना।

इस विवेचना के बाद हम कह सकते है सम्यक व्यायाम वह क्रिया है जिसके करने से अशुभ मनः स्थिति का नाश होता है तथा शुभ मनः स्थिति का उद्भव होता है।

सम्यक् स्मृति - अब तक साधक ने जो भी ज्ञान प्राप्त किया उसका सदैव उसको स्मरण रखना अत्यावश्यक है। और सम्यक स्मृति इस बात पर ही जोर देती है। सम्यक् स्मृति का अर्थ पदार्थ के वास्तविक स्थिति एवं स्वरूप के विषय में जागरूक रहना है। निर्वाण के इच्छुक व्यक्ति को शरीर को शरीर, मन को मन, संवेदना को संवेदना समझना जरूरी होता है इन सब में से किसी के विषय में यह सोचना यह मैं हू अथवा यह मेरा है सर्वदा भ्रमात्मक है। शरीर को शरीर, मन को मन समझने का अर्थ है इन वस्तुओं को अस्थायी एवं दु:खदायी समझना। नाशवान वस्तुओं की स्मृति सम्यक् स्मृति है। इसका पालन एक निर्वाण चाहने वाले व्यक्ति को समाधि के योग्य बनाता है। अटठ्सालिनी में कहा गया है की स्मरण मात्र ही स्मृति है।[122] स्मृतिमान बुरे धर्मों का प्रहाण करता है और सुख.कर धर्मों को स्वीकार करता है।[123] स्मृत्युपस्थान के अनुसार स्मृति एवं उसका विषय दोनों भिन्न वस्तुएं होती है। यह स्मृत्युपस्थान चार प्रकार का होता है[124].

1. **कायानुपश्यना -** काया की अशुभता तथा मलिनता का स्मरण कायानुपश्यना कहलाती है।
2. **वेदनानुपश्यना -** वेदनाओं की क्षणिकता एवं दु:खरूपता का स्मरण ही वेदनानुपश्यना कहलाती है।
3. **चित्तानुपश्यना -** चित्त के प्रति सजग रहना अर्थात् चित्त की क्षणिकता एवं मलिनता का स्मरण रखना।
4. **धर्मानुपश्यना -** धर्मों की क्षणिकता एवं मलिनता का स्मरण रखना।

इस तरह काया, वेदना, चित्तो, और धर्मों के प्रति सजग रहना सम्यक स्मृति है।

---

[122] सम्मा सरति,सम्मा वा ताय सरन्ती ति सम्मासति। अट्ठसालिनी ३.२३२, पृ १०२

[123] ततो योगावचरे सेवितब्बे धम्मे सेवति, असेवितब्बे धम्मे न सेवति भजितब्बे धम्मे भजति, अभजितब्बे धम्मे न भजति । मिलिन्दपञ्ह पृ० ३९

[124] म०नि०१.५६ पृ० ७७

सम्यक् समाधि - उपर्युक्त सात मार्गों पर चलने के बाद निर्वाण की चाह रखने वाला साधक अपनी चित्त वृत्तियों का निरोध कर समाधि की अवस्था अपनाने के योग्य हो जाता है। समाधि का विशेष चिंतन अलग से आगे एक विशेष अध्याय में विस्तृत रूप से किया गया है।

बौद्ध दर्शन में इन अष्टांगिक मार्ग को त्रिरत्नों अर्थात शील, समाधि एवं प्रज्ञा नामक विशेष अंगों में बांटा गया है। इन त्रिरत्नों का विवेचन इस प्रकार है -

3.1.4.2 बौद्धों के त्रिरत्न

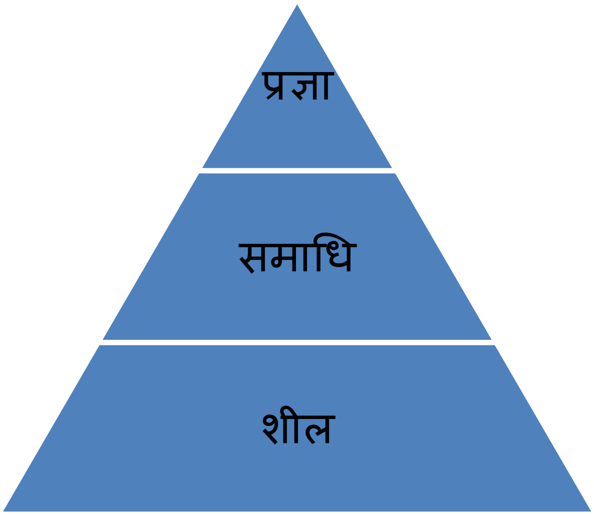

किसी देवपुत्र द्वारा तथागत से यह प्रश्न पूछने पर की भगवान यह मनुष्य जैसे अंदर जञ्जालों से घिरा हुआ है वैसे ही बाहर से भी जञ्जालों से घिरा हुआ है अतः हे गौतम! मेरा आपसे यही पूछना है कि कौन इन जञ्जालों को काटकर मुक्ति पा सकता है तथागत द्वारा इस प्रश्न का उत्तर अत्यंत संक्षिप्त रूप में इस प्रकार दिया गया . देवपुत्र प्रज्ञावान, वीर्यवान, तथा पंडित साधक शील में प्रतिष्ठित होकर इन उपर्युक्त जञ्जालों को काट सकता है।[125] अर्थात् शील, समाधि एवं प्रज्ञा निर्वाण के मार्ग है इन्हें ही विशुद्धि का मार्ग भी कहते हैं। कायशुद्धि, वाकशुद्धि तथा मन:शुद्धि उस शील के आकर है। बौद्ध दर्शन अष्टांग मार्ग को त्रिविध साधना मार्ग के रूप में भी स्वीकार करता है बौद्ध साधनाएं शील, समाधि, प्रज्ञा के रूप में जानी जाती हैं।

---

[125] सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं। आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजट्ये जटं॥ सयुत्तनिकायपालि १.१४, विसु० १.१ पृ० २

शील - का अर्थ है सत्कर्मों को करना और असत्कर्मों से बचना । बौद्धसाधनाभ्यास का आधार शील माना गया है संसार में शील एवं प्रज्ञा को श्रेष्ठ और उत्तम माना गया है इन्हीं के माध्यम से समाधि की प्राप्ति होती है। कहा गया है . जो सदा शीलसंपन्न व प्रज्ञावान है, जो सुष्ठु प्रकार से समाहित है, समाधिस्थ है, जो अशुभ का नाश व सुख की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील और दृढ़ संकल्प वाला है वही संसार रूपी दुस्तर ओघ को पार करता है ।[126]

शील को कुशल धर्मों का आधार माना गया है इसे शिरार्थ भी कहा जाता है जैसे सिर कट जाने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है वैसे ही शीलभंग होने से शरीर नष्ट हो जाता है। शील के महत्व को स्वीकारते हुए बौद्ध धर्म में उपासको और गृहस्थों दोनों के लिए पंचशील को आवश्यक माना गया है बौद्धसाधना में शीलसंपन्न साधक ही समाधि का अधिकारी होता है इस शील का विभाजन इस प्रकार किया गया है .

गृहस्थ और भिक्षुओं दोनों के लिए पंचशील - अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य का पालन और मदिरा आदि नशीली वस्तुओं का त्याग करना। इनका पालन गृहस्थ और भिक्षुओं दोनों के लिए विहित है

केवल भिक्षुओं के लिए - उपर्युक्त पांच गृहस्थ शीलों के अतिरिक्त और अन्य 5 शीलों का विधान है . जिसमें असमय भोजन, माला. धारण, संगीत नृत्य आदि, स्वर्ण रजत आदि और सुखद शय्या का त्याग शामिल है।

समाधि - समाधि के तहत चार प्रकार के ध्यानों को बताया गया है.

प्रथम ध्यान - यह ध्यान सवितर्क ,सविचार और विवेक से उत्पन्न प्रीति सुख वाला होता है।

द्वितीय ध्यान - इसमें वितर्क और विचार का शमन होने से मन:प्रसाद के कारण चित्त की एकाग्रता से संयुक्त समाधिजन्य प्रीतिसुख वाला होता है।

तृतीय ध्यान - के अन्तर्गत साधक प्रीति एवं विराग को भी छोड़कर स्मृतिमान हो करके सुख विहार की प्राप्ति करने वाला होता है।

चतुर्थ ध्यान - इस अवस्था में साधक सुख एवं दु:ख दोनों की उपेक्षा करके स्मृति और उपेक्षा के द्वारा पवित्र होकर विचरण करता है।

---

126 सयुत्तनिकायपालि १.५३

प्रज्ञा . कुसलचित्त से युक्त विपश्यना ज्ञान प्रज्ञा कहलाती है।[127] यह प्रज्ञा निम्न प्रकार की मानी गयी है .

श्रुतमयी . अर्थात् बुद्धवाक्यजन्य निश्चय।

चिंतामयी . बौद्धिक चिंतन से उत्पन्न निश्चय।

भावनामयी . समाधिजन्य ज्ञान मानी गई है।

भावनामयी प्रज्ञा चतुर्थ ध्यान में दृष्ट होती है। इसी से कामास्राव, भवास्रव, अविद्यास्रव का आत्यंतिक विनाश हो जाने के बाद साधक मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जिससे वह जन्म.मरण के दु:चक्र से मुक्त हो जाता है।[128]

3.2 बौद्ध साधना विषयक दृष्टिकोण

बौद्ध साधना का क्रम व्यवस्थित व सुनियोजित रूप में स्थूल से सूक्ष्म की ओर गतिशील होता है। तथागत के उपदेशों में उनको मानने वालों ने समय व परिस्थिति के अनुसार बदलाव किया जिसके कारण उनके मन्तव्यों में भेद प्रकट हो गए। मुख्य रुप से बौद्ध साधना हीनयान एवं महायान के रूप में भिन्न.भिन्न दृष्टिकोणों को प्रदर्शित करती है। जिसका विवरण इस प्रकार है.

3.2.1 हीनयान अथवा स्थविरवाद बौद्ध साधना

बौद्ध दर्शन का परंपरावादी धार्मिक संप्रदाय हीनयान बुद्ध के उपदेशों पर आधारित है। इसमें सभी वस्तुओं को छड़भंगुर माना गया है तथा अनात्मवाद की मीमांसा की गई है यह एक अनीश्वरवादी धर्म होने के कारण इस संप्रदाय में ईश्वर का स्थान कम्म तथा धम्म को दिया गया इसके अनुसार संसार का नियामक धम्म है, धम्म के कारण व्यक्ति के कर्म फल का नाश नहीं होता है। यह सम्प्रदाय अनुयायियों को संघबद्ध होने के फलस्वरूप साधक को आध्यात्मिक बल मिलता है ऐसा मानता है तथा बौद्ध धर्म के अनुयायियों को **बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि** का व्रत लेना भी परमावश्यक मानता है। साथ ही स्थविरवाद के अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है और इसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य को बुद्ध के चार आर्य सत्य का

---

127 कुसलचित्तसम्पयुत्तं विपस्सनाञाणं पञ्ञा। विसु० १४.२ पृ० ४

128 दीघनिकाय२सामाअज्फ्लसुत्त

मनन चिंतन करना आवश्यक है। हीनयान में स्वावलंबन और सन्यास के आदर्श को मानते हुए व्यक्ति को सिर्फ निजी मोक्ष की चिंता करने बात कही गयी है। स्थविरवाद के अनुसार सभी योगिक वस्तुए दो तत्वों से मिलकर बनी है नाम एवं रूप इन दोनों की गणना पंच स्कंध, द्वादश आयतन और अष्टादश धातुओं में की गई है। यह संप्रदाय ब्रह्माण्ड की संरचना में शामिल तत्वों के बहुलवादी धारणा को मानता है इन तत्वों का क्रम है.

1 (नाम, रूप) > 5 (पंचस्कन्ध) > 12 (द्वादश आयतन) > 18 (अष्टादश धातुए)।

बौद्ध दर्शन के अन्य संप्रदायों में 18 से आगे भी संख्या बढ़ती है। इस संप्रदाय के मानसिक एवं नैतिक दर्शन को अभिधम्मथतसंगहो में अनिरुद्ध आचार्य द्वारा व्याख्यायित किया गया जिसमें इसके नैतिक व मानसिक दर्शन को चार भागों में बांटा गया है

१. चित्त . इसे 89 भागों में विभाजित किया गया है

२. चैतसिक . इसे 52 भागों में

३. रूप . इसे 28 भागों में

४. निर्वाण . यह सुख की सर्वोच्च अवस्था है जो उत्साह , वैर एवं भ्रम से मुक्त है।

स्थविरवाद की साधना पद्धति में साधक जब वस्तुओं की वास्तविक स्वरूप को जान लेता है तब वह सांसारिक जीवन में से दूर हटते हुए वैराग्य एवं उत्साह को त्याग कर मध्यम मार्ग को अपनाता है अर्थात अष्टांगिक मार्ग पर चलता है। और वह यह भी जान लेता है कि सांसारिक दुख का कारण तृष्णा है और इस तृष्णा का अंत कर साधक अर्हत पद को प्राप्त कर लेता है फिर वह जरा मरण की चक्र से मुक्त हो जाता है। यह अर्हत पद ही स्थविरवाद का सर्वोच्च एवं आदर्श पद है। तथा उसके अनुयायी साधक के लिए भी यह अर्हत पद परम लक्ष्य है।[129]

3.2.2 महायान बौद्ध साधना

महायान के अनुसार बोधिसत्त्व की प्राप्ति ही जीवन का उद्देश्य है। इसमें अपनी मुक्ति की अपेक्षा संसार के समस्त जीवों की मुक्ति पर जोर दिया गया है। और इस प्रवृत्तिमार्गी धार्मिक सम्प्रदाय का विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति में बोधिसत्त्व प्राप्त करने की क्षमता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सम्भाव्य बुद्ध है। महायान साधनात्मक दृष्टिकोण में निम्न बातों को स्वीकार किया गया है.

[129] 2500 years of buddhism-p.v. bapat page 85-87

बोधिचित्त की साधना - महायान बोधिचित्त की साधना का मूल अचित्तता मानता है। उसके अनुसार व्यष्टि को अस्वीकार कर समष्टि को स्वीकार करना ही अचित्तता है । यह करुणा और प्रज्ञा दोनों का मूलस्रोत है।

चार या छः परमिताओं की साधना - इस सम्प्रदाय के अनुसार बौद्ध साधना में साधना करने वाला दो प्रकार के संभार का संग्रह करता है **१. पुण्य संभार २. ज्ञान संभार।** पुण्यसंभार की प्राप्ति कुशलरहित कर्मों के विनाश व कुशल कर्मों को करने से होती है जबकी ज्ञान संभार को वास्तविक.अवास्तविक, कुशल.अकुशल के अन्तर के रूप में जान सकते है। हम यह कह सकते हैं कि ज्ञान संभार प्रज्ञा की असंगता एवं निःस्वाभावता है। दान, शील, शांति, वीर्य, ध्यान ये पांच परमिताएं पुण्यसंभार हैं तथा प्रज्ञापारमिता ज्ञानसंभार है। इसके अलावा इन ६ परमिताओं के साथ ही साथ बोधिचित्त की साधना हेतु उपाय, प्रणिधान, बल एवं ज्ञान इन चार परमिताओं कि साधना भी अनिवार्य कही गयी है।

दशभूमियाँ - बोधिसत्व के आध्यात्मिक उन्नति हेतु आवश्यक 10 भूमियों प्रमुदिता, विमिला, प्रभाकरी, अर्चिष्मती, सुदुर्गमा, अभिमुखी, दुरंगमा, अचला, साधुमती व धर्ममेधा को भी महायान सम्प्रदाय की साधना में सम्मिलित किया गया है।

त्रिकायवाद. महायानी बौद्ध दृष्टिकोण महात्मा बुद्ध के तीन काय स्वीकारता है.

१ धर्मकाय. इसमें ऐसे कर्म समूह को शामिल किया गया है जिसके लाभ के बाद कोई भी मनुष्य सारे धर्मों का ज्ञान प्राप्ति करके बुद्ध हो सकता है। इसको सर्वोत्तम काय माना गया है।

२ रूप काय. गौतम बुद्ध को जो काया जन्म के समय प्राप्त हुय़ी उसे रूपकाय कहते है। इसी से वह विविध बुद्ध की संरचना करते है॥

३ संभोग काय. इसको बुद्ध की विभूति माना गया है इसी के द्वारा वे देव मंड़लों में धर्मसंभोग करते हैं।

यह महायान सम्प्रदाय भक्ति के महत्त्व को स्वीकारते हुए महात्मा बुद्ध की मूर्ति.पूजा व अर्चना की बात करता है। क्योकि यह सम्प्रदाय स्वाभावतः भक्तिमय मनुष्य के कल्याणार्थ भक्ति को सरल पथ के रूप में स्वीकारता है।

चतुर्थ अध्याय

बौद्ध दर्शन में वर्णित ध्यान एवं समाधि का स्वरूप

4.1 बौद्ध दर्शन में ध्यान का स्वरूप

बौद्ध साहित्य में ध्यान शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ चिंतन किया गया है।[130] ध्यान शब्द **ध्यै . चिन्तायम धातु** से निष्पन्न है। पालि एवं प्राकृत भाषा में ध्यान को झान कहा गया है। बौद्ध साहित्य में ध्यान की परिभाषा इस प्रकार मिलती है -

आचार्य बुद्धघोष के मत में ध्यान किसी विषय पर चिन्तन करना है[131] अर्थात "आलंबन को देखकर चिंतन (उपनिज्झान) करने या प्रतिकूल धर्मों को जला देने से ध्यान कहलाता है।'[132]

आचार्य वसुबंधु के अनुसार जिससे ध्यान करते हैं और समाहित चित्त में जो यथाभूत ज्ञान होता है, वही ध्यान कहलाता है।[133] और अभेद रूप से ध्यान समाधि स्वभाव होने से कुशल चित्त की एकाग्रता है।[134]

भारतीय दार्शनिक परम्परा में ध्यान, योग, समाधि और समापत्ति शब्दों का प्रयोग अधिकांशत: देखने को मिलता हैं। बौद्ध दर्शन में ये शब्द प्रायः एक.दूसरे के लिए प्रयुक्त मिलते हैं। बौद्ध साधना पद्धति में ध्यान का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए ध्यान साधना अत्यंत आवश्यक मानी गई है। क्योंकि पवित्र साधन से ही पवित्र साध्य की प्राप्ति हो सकती है ऐसा माना गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा बुद्ध की साधना पद्धति का तो प्रारंभ ही ध्यान से होता है। वे अपने समय के ध्यान मार्ग के प्रसिद्ध आचार्य आलारकालाम और उद्दक राम पुत्र से मिलकर दीक्षा

---

130 निस्पन्नार्थो ही एष धातु। अर्थविनिश्चयसूत्र, पृ० १७९

131 झायत्ति उपनिज्झायतीति झानम् ।

132 आरम्मणूपनिज्झानतो पच्चनीकझापनतो वा झानम्। विसु० ४.४४ पृ० २२७

133 ध्या यन्त्यनेति। प्रजानन्तीत्यर्थ:। समाहितचित्तस्य यथाभूतप्रग्यानत्। अभिधर्मकोश भाष्य, पृ० ४३३

134 अभेदेन कुशलचित्तैकाग्रता ध्यानं समाधिस्वभावात्। अभिधर्मकोश् भाष्य, पृ० ४३३

लिया और ध्यान साधना का अभ्यास किया। बुद्धचरितादि ग्रन्थों से हमें तो यह पता ही चलता है कि महात्मा बुद्ध प्राय: एकांत चिंतन और ध्यान में रत रहते थे ।

आचार्य बुद्धघोष विरचित बुद्धचरित से हमें यह पता चलता है कि महात्मा बुद्ध महाभिनिष्क्रमण के बाद संबोधि की खोज में अराड़कलाम के पास जाकर उनसे ध्यानयोग की सातवीं सीढ़ी तक की शिक्षा प्राप्त करते हैं जिससे वे संतुष्ट नहीं होते और ज्ञान पिपासा की खोज में आगे निकल जाते हैं ज्ञान पिपासु तथागत अन्वेषक् के रूप में उद्दक रामपुत्र के पास जाते हैं जिनसे वे ध्यान योग की आठवीं सीढ़ी नैवसंज्ञानासंज्ञानयतन तक की शिक्षा ग्रहण करते हैं परंतु वे इतने से ही संतुष्ट नहीं होती वे स्वयं ध्यान साधना में निरंजना नदी के तट पर ध्यान रत हो जाते हैं जहाँ उन्हें ज्ञान की प्राप्ति होती है उनका मानना था कि ध्यानाराधन और ज्ञानाराधन की प्राप्ति बिना आत्मा को कष्ट दिए और काम भोगों में बिना सम्मिलित हुए भी हो सकती हैं।[135] इसलिए उन्होंने मध्यम मार्ग को अपनाया और कुछ भोजन लेकर समाधि में लीन होते हैं और सम्यक सम्बोधि को प्राप्त करते हैं। निर्वाण प्राप्ति के बावजूद भी वे जीवन पर्यंत ध्यान चिंतन में लगे रहते थे इससे इस बात का पता चलता है कि महात्मा बुद्ध के जीवन में ध्यान योग का कितना महत्वपूर्ण स्थान था वह उनकी दैनिक क्रिया का एक भाग बन गया था भगवान बुद्ध अपने शिष्यों को प्रायः ध्यान साधना करने का आदेश देते थे वे कहते है कि भिक्षुओं ध्यान करो ध्यान करने में प्रमाद मत करो।[136]

4.1.1 बौद्ध दर्शन में ध्यान के भेद

बौद्ध दर्शन में ध्यान का दो प्रकार से विभाजन किया गया है

१ समापत्ती ध्यान या लौकिक ध्यान

२ उपपत्ति या लोकोत्तर ध्यान।[137]

प्रथम समापत्ति ध्यान . इस के दो भेद किए गए रूपसमापत्तिध्यान और अरूपसमापत्तिध्यान, रूपसमापत्ति ध्यान के चार भेद किए गए जिन्हें ध्यान चतुष्ट्य कहा जाता है.

---

135 ..आत्मकायक्लमथानुयोगो दु:खो अनर्तोपसंहितो..। ललितविस्तर, पृ० ३०३

136 झायथ भिक्खवे, मा पमादत्थ मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुशासनोति। सं० नि० २.१३३, पृ० १२१

137 द्विधा ध्यानानि समासतो द्विविधानि ध्यानन्युपत्तिसमापत्तिध्यानभेदात। अभि० को० भा० ८.१, पृ० ४३२

चित्तवृत्तियाँ

बौद्ध साहित्य के प्रमुख ग्रन्थ विशुद्धिमग्ग में रूपसमापत्तिध्यान के अंतर्गत 11 प्रकार की चित्त वृत्तियों का उल्लेख मिलता है .

१ - वितर्क

२ - विचार

३ - प्रीति

४ - सुख

५ - एकाग्रता

६ - अध्यात्म संप्रसाद

७ - संप्रजन्य

८ - अदु:खासुखावेदना

९ - उपेक्षा परिशुद्धि

१० - स्मृति परिशुद्धि

११ - समाधि परिशुद्धि ।[138]

वहीं अभिधम्मथसंगहो कुल 11 में प्रथम 5 चित्तवृत्तियाँ ही मानी गई हैं.

१ वितर्क - ध्यान के विषय में चित्त का प्रवेश।

२ विचार - ध्यान विषय में गहरे उतरने को विचार कहते हैं

३ प्रीति - उससे जो आनंद उपलब्ध होता है उसे प्रीति कहते हैं

४ सुख - उस आनंद से शरीर को जो समाधान मिलता है वह सुख है

५ एकाग्रता - और उस विषय में चित्त की जो एकाग्रता होती है उसे एकाग्रता कहते हैं ।[139]

ध्यान चतुष्टय

ध्यान चतुष्टय के अंतर्गत ध्यान के उत्तरोत्तर चरण में चित्तवृत्तियों का दमन होता जाता है यहाँ पर हम विशुद्धिमग्ग सम्मत और अभिधम्मथसंगहो सम्मत ध्यान के स्वरूप का वर्णन करेंगे विशुद्धमग्ग में ध्यान चतुष्टय का उल्लेख इस प्रकार मिलता है.

---

138 अभिधर्मकोश भाष्य ८, पृ० ४३२

139 अभिधर्मकोश भाष्य, पृ० ८७

प्रथम ध्यान - इस चरण में साधक कामनाओं और अकुशल धर्मों से अलग होकर वितर्क विचार सहित विवेक से उत्पन्न प्रीति और सुख संयुक्त प्रथम ध्यान की प्राप्ति करता है|[140] इस चरण में वितर्क, विचार प्रीति, सुख और एकाग्रता इन पाँचों चित्तवृत्तियों की उपस्थिति होती है .

द्वितीय ध्यान - इस चरण में वितर्क और विचार वृत्ति शांत हो जाती हैं तथा प्रीति, सुख, एकाग्रता और अध्यात्मसंप्रसाद से संयुक्त चित्त्वृतियों वाला योगी होता है।[141]

तृतीय ध्यान - इसमें योगी उपेक्षक स्मृतिमान सुखविहारी कहलाता है क्योंकि वह प्रीति के वैराग्य से उपेक्षित हो जाता है। इसमें सुख, स्मृतिसम्प्रजन्य, उपेक्षा और एकाग्रता ये 5 चैतसिक शेष रहते हैं।[142]

चतुर्थ ध्यान - इसमें सुख.दुख से रहित उपेक्षा एवं स्मृति की परिशुद्धि से युक्त योगी चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। इसे ही चतुर्थ ध्यान कहते है।[143]इस अवस्था में असुखादु:खावेदना, स्मृति, उपेक्षा ,समाधिपरिशुद्धि ये चारों चैतसिक रहते हैं।

अभिधम्मथसंगहो में पांच प्रकार के ध्यानों की गणना की गई है तथा पांच ही प्रकार की ही चित्तवृत्तियाँ बताई गई हैं।[144]

प्रथम ध्यान - इसमें पांचों ही वृत्तियाँ वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और एकाग्रता होती हैं ।[145]

---

140 इधावुसो, भिक्खु विविच्चेव हि कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति । दी० नि० ३.२२, पृ० १७३

141 वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झतं सम्सादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचार समाधिजं प्रीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। दी० नि० ३.२२, पृ० १७३

142 पीतिपा च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति यं तं अरिया आचिक्खन्ति उपेक्खको सतिमा सुखविहारी ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। दी० नि० ३.२२, पृ० १७३-७४

143 सुखस्य च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्स दोममनस्सानं अत्थंगमा अदुक्खसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धि चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। । दी०नि० ३.२२ पृ० १७४

144 अभिधम्मत्थसङ्गहो पृ० ८७

145 वितक्कविचारपीतिसुखेकग्गतासहितं पठमज्झानकुसलचित्तम्। अभिधम्मत्थसङ्गहो पृ० ६२

द्वितीय ध्यान - इस ध्यान में वितर्क का समन हो जाता है और विचार, प्रीति, सुख और एकाग्रता से युक्त ध्यान होता है।[146]

तृतीय ध्यान - इसमें सुख और एकाग्रता की प्रधानता होती है। तथा साथ में प्रीति भी संयुक्त होती है।[147]

चतुर्थ ध्यान - सुख और एकाग्रता से युक्त चतुर्थ ध्यान होता है।[148] इसमें एकाग्रता की प्रधानता होती है।

पंचम ध्यान - यह ध्यान उपेक्षा तथा एकाग्रता से युक्त होता है तथा इसमें उपेक्षा ,स्मृति परिशुद्धि की प्रमुखता रहती है।[149]

और अरूपसमापत्ति ध्यान के भी चार भेद किए गए .

१ आकाशानन्त्यायतन - इसमें तीन संज्ञाओं का निवारण होता है।

१ रूपसंज्ञा अर्थात जड़ सृष्टि संबंधी विचार।

२ प्रतिघसंज्ञा अर्थात इंद्रियों और विषयों का प्रत्याघातमूलक विचार।

३ नानात्वसंज्ञा अर्थात् अनेकविध रूप, शब्दादि आलम्बनों का विचार। इन तीनों संज्ञाओं का अनुक्रम, अस्तङ्गम, और अमनसिकार होने पर आकाश अनंत है ऐसी संज्ञा उत्पन्न होती है। इसे आकाशान्त्यायतन ध्यान कहते हैं।[150] चतुर्थ ध्यान साध्य करने के पश्चात साधक अपने ध्यान बल से उस उस कसिण की विश्वाकार आकृति को दूर करके विश्व में केवल एक आकाश ही भरा हुआ है। ऐसा देखता है। चतुर्थ ध्यान तक रूपात्मक आलंबन था, अब आरूपात्मक अलंबन है; इसलिए आकाश अनंत है। ऐसी संज्ञा होने से इसे आकाशानन्त्यायतन कहा गया है।

---

146 विचारपीतिसुखेकग्गतासहितं दुतिज्झानम्। वहीं

147 पीतिसुखेकग्गतासहितं ततियज्झानम्। वहीं

148 सुखेकग्गतासहितं चतुज्झानम्। वहीं

149 उपेक्खेकग्गतासहितं पञ्चमज्झानम्। वहीं

150 "सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा अनन्तो आकास ति आकासानञ्च्चायतनं उपसम्पज्जविहरति" अभिधम्मपिटक २.२९५ विसु० १०.७ पृ० १९७

२ विज्ञानानन्त्यायतन - इस ध्यान में साधक आकाशसंज्ञा का समतिक्रम करता है। आकाश की अनंत मर्यादा ही विज्ञान की मर्यादा है ऐसी संज्ञा उत्पन्न करने पर वह विज्ञान का आनन्त्य जिसका अलम्बन है, ऐसे ध्यान को प्राप्त करता है।[151]

३ आकिंचन्यायतन - इस ध्यान में साधक विज्ञान में भी दोष देखता है और उसका समतिक्रम करने के लिए विज्ञान के अभाव की संज्ञा प्राप्त करता है। अभाव भी अनंत है; कुछ भी नहीं, सब कुछ शांत है इस प्रकार की भावना करने पर साधक इस तृतीय अरूप ध्यान को प्राप्त होता है।[152]

४ नैवसंज्ञानासंज्ञायतन - अभाव की संज्ञा भी बड़ी स्थूल है। अभाव की संज्ञा का अभाव जिसमें है ऐसा अति शांत, सूक्ष्म यह चौथा आयतन है। इस ध्यान में संज्ञा अति सूक्ष्म रूप में रहती है, इसलिए इसे असंज्ञा नहीं कह सकते, और स्थूल रूप में ना होने के कारण उसे संज्ञा भी नहीं कह सकते। पालि में एक उपमा देकर इसे समझाया गया गुरु और शिष्य प्रवास में थे मार्ग में थोड़ा जल था। शिष्य ने कहा आचार्य मार्ग में जल है; इसलिए जूता निकाल लीजिए गुरु ने कहा अच्छा तो स्नान कर लूं, पात्र दो।" उसने कहा गुरुदेव स्नान करने योग्य जल नहीं है जिस प्रकार उपानह को भिगोने के लिए पर्याप्त जल है, किंतु स्नान के लिए पर्याप्त नहीं है; इसी प्रकार इस आयतन में संज्ञा का अतिसूक्ष्म अंश विद्यमान है, किंतु संज्ञा का कार्य हो इतना स्थूल भी वह नहीं है, इसलिए इस आयतन को नैवसंज्ञानासंज्ञायतन कहा गया है। इसी विषय में कहा गया है कि . सर्वथा आकिञ्चान्यायतन का अतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त कर साधक विहार करता है।[153] यह आयतन प्राप्त करने पर ही साधक निरोध समापत्ति को प्राप्त कर सकता है, जिसमें निश्चित काल (सात दिन) तक साधक की मनोवृत्तियों का आत्यन्तिक निरोध होता है।

---

151 "सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम अनन्तं विञ्ञाणं ति विञ्ञाणाञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति" अभिधम्मपिङ्क २.३९५, विसु० १०.१६ पृ० २०३

152 "सब्बसो विञ्ञाण्ञायतनं समतिक्कम नत्थि किञ्ची ति आकिञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरती" अभिधम्मपिटक २.३९५, विसु० १०.२१ पृ० २०६

153 "सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति" अभिधम्मपिटक २.३९५, विसु० १०.२४ पृ० २०८

इन चार अरूप ध्यानों में केवल दो ही ध्यानाङ्ग रहते हैं . उपेक्षा और चित्तैकाग्रता। ये चार ध्यान अनुक्रम से शान्ततर, प्रणीततर और सूक्ष्मतर होते हैं।
अलोभादि शुद्धधर्म के योग से लौकिक ध्यान कुशल [शुभ] और शुद्धक् कहलाता है।[154] जबकि लोकोत्तर ध्यान आनास्रव ही होता है।[155]

इस प्रकार कुल 8 प्रकार के ध्यान हुए। परंतु ये ध्यान साधक को निवारणों [कामाच्छन्द, व्यापद, स्त्यानमिद्ध, औद्धत्यकौकृत्य एवं विचिकित्सा] के शांत होने के पश्चात ही चित्त को ध्यान में लगाने पर प्राप्त होते हैं। क्योंकि निवारण एक अकुशल धर्म है जो ध्यान के अंगों के विरोधी होते हैं यथा .

१ **कामाच्छन्द** - कामाच्छन्द समाधि रूप एकाग्रता का विरोधी है।
२ **व्यापद** - व्यापद प्रीति का विरोधी होता है।
३ **स्त्यानमिद्ध (आलस्य और अकर्मण्यता**) - वितर्क का विरोधी है।
४ **औद्धत्यकौकृत्य** - यह सुख का विरोधी होता है।
५ **विचिकित्सा** - विचार का विरोधी है।

इस वर्णन से हम यह समझ सकते हैं की पांच निवारणों में से प्रथम काम से अलग होने पर एकाग्रता का तथा शेष निवारणों से अलग होने पर क्रमशः वितर्क, विचार, प्रीति और सुख रूपी ध्यान अंग उत्पन्न होते हैं। और इस प्रकार ध्यान के अंगों के उत्पन्न होने से योगी ध्यान का लाभ प्राप्त करता है।
किंतु इन दोनों के बीच में ध्यान की दो और अवस्थाओं की चर्चा मिलती है जिन्हें उपध्यान कहा गया है .

१ **ध्यानन्तर उपध्यान** - एक ध्यान की तुरंत बाद द्वितीय चरण में संपन्न अवस्था ध्यानान्तर उपध्यान कहलाता है।

२ **सामंतक उपध्यान** - प्रत्येक ध्यान के बाद तृतीय क्षण में संपन्न ध्यान की अवस्था सामंतक उपध्यान कहलाता है।

---

[154] लौकिकं कुशलं समापत्तिद्रव्यं शुद्धकमुच्यते अलोभादि शुद्धधर्मयोगात। अभिधर्मकोश भाष्य ८.६, पृ० ४३७

[155] ...लोकोत्तरमनास्रवम्। वहीं

4.1.2 विपश्यना

भगवान बुद्ध ने ध्यान की विपश्यना साधना द्वारा बुद्धत्व प्राप्त किया था उनकी शिक्षाओं में से विपश्यना एक प्रमुख शिक्षा है। यह वास्तव में सत्य की उपासना, सत्य में जीने का अभ्यास एवं तत्काल में जीने की कला है। विपश्यना व्यवहारिक रूप में भूत की चिंता एवं भविष्य की शंका को त्याग कर वर्तमान के बारे में सोचने की सम्यक क्रिया एवं ज्ञान है यह श्वास के आवागमन का साक्षी भाव करने तथा महसूस करने के स्वाभाविक प्रक्रिया है।

"विसेसेन पस्सतीति विपस्सना" धर्मों का विशेष रूप में दर्शन करने वाली प्रज्ञा विपश्यना [विदर्शना] है। महाकुशल एवं महाक्रिया चित्तों में सम्प्रयुक्त प्रज्ञा विशेष ही विपश्यना है। नाम एवं रूप धर्मों के संघात से उत्पन्न सविज्ञानक द्रव्यों में सामान्यतः यह मनुष्य है, यह देव है, यह ब्रह्मा है, यह तिरश्चीन है, इत्यादि संज्ञाएं केवल रूप कलापों के संघात से उत्पन्न निर्विज्ञानक द्रव्यों में यह ग्रह है, यह वृक्ष है, इत्यादि संज्ञाए तथा सविज्ञानक एवं निर्विज्ञानक दोनों प्रकार के द्रव्यों में यह नित्य है, यह सुख है, यह सात्मक है, यह शुभ है, इत्यादि संज्ञाएं उत्पन्न होती हैं। विपस्सना नामक ज्ञान इन उपर्युक्त संज्ञाओं से वियुक्त होकर यह रूप है, यह नाम है, यह अनित्य है, यह दुख है, यह अनात्म है , यह अशुभ है , इत्यादि प्रकार से विशेषत: जानने वाला धर्म है। अतएव विसेसेन पस्सतीति विपस्सना कहा गया है अथवा **"विविधेन अनिश्चादि अकारेन पस्सतीति विपस्सना"** धर्मों को विविध अर्थात् अनित्य, अनात्म, दुख, अशुभ आदि आकारों से देखने वाले प्रज्ञा विपस्सना कही गई है।[156]

इस विपश्यना कमठान में जानने योग्य वस्तुएं इस प्रकार हैं यथा . ७ विशुद्धियाँ, ३ लक्षण, ३ अनुपस्यनाएं, १० ज्ञान, ३ विमोक्ष एवं ३ विमोक्षमुख।

सप्त विशुद्धियाँ . विसुद्धिमग्ग में कहा गया है कि सप्त विसुद्धियों में शील तथा चित्तविशुद्धि मूल हैं तथा शेष पांच विशुद्धियाँ शरीर हैं।[157] इनका वर्णन इस प्रकार है.

---

[156] विसेसेना पस्सन्ति एताया ति विपस्सना;अनिच्चानुपस्सनादिका भावना पञ्ञा। प० दी, पृ० ३६०

[157] सीलविसुद्धि चेव,चित्तविसुद्धि चा ति इमा द्वे विसुद्धियो मूलं। दिट्ठिविसुद्धि, कङ्खावितरणविसुद्धि, मग्गामग्गञाणदस्सनविसुद्धि, पटिपदाञाणदस्सनविसुद्धि, ञाणदस्सनविसुद्धि ति इमा पञ्च विसुद्धियो सरीरम्। विसु० १४.१७ पृ० १४

1 शीलविशुद्धि . प्रतिमोक्षसंवरशील, इन्द्रियसंवरशील, आजीवपरिशुद्धिशील, प्रत्ययसन्निश्रितशील को शील विशुद्धि कहते है ।[158]

२ चित्त विशुद्धि . उपचारसमाधि एवं अर्पणासमाधि . इस प्रकार द्विध समाधि चित्तविशुद्धि है ।[159] उपचार सहित आठ समापत्तियाँ है। कामच्छन्दादि पंच नीवारणों के प्रहाण से चित्त विसुद्धि की प्राप्ति होती है।

३ दृष्टि विशुद्धि . पंचस्कन्धों [रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, और विज्ञान] को यथार्थ रूप में देखना दृष्टि विशुद्धि है ।[160]

४ कांक्षावितरणविशुद्धि . नाम और रूप के प्रति तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले संदेह को मिटाने वाला ज्ञान कांक्षावितरणविशुद्धि कहलाता है। अर्थात् मैं अतीत में था अनागत में होउंगा अथवा नहीं आऊंगा इस प्रकार की शंकाओं का ज्ञान इस विशुद्धि से होता है ।[161]

५ मार्गामार्गज्ञानदर्शनविशुद्धि . उचित और अनुचित मार्ग को जानने वाला ज्ञान ही मार्गामार्गज्ञान दर्शन विशुद्धि है ।[162] अर्थात उपक्लेशों से विमुक्त विपश्यना ज्ञान ही यथार्थ मार्ग है ऐसी विशुद्धि।

६ प्रतिप्रदाज्ञानदर्शनविशुद्धि . आठ ज्ञानों के अनुसार श्रेष्ठत्व प्राप्त विपश्यना और सत्त्यानुलोमिक ज्ञान इन्हें ही प्रतिप्रदाज्ञानदर्शनविशुद्धि कहते हैं ।[163]

---

158 पातिमोक्खसंवरशीलं, इन्द्रियसंवरशील, आजीवपरिशुद्धिसीलं, पच्चयसन्निस्सितसीलञ्चेति चतुपारिसुद्धिसीलं सीलविसुद्धि नाम। अभि० पृ० ९२०

159 उपचारसमाधि अप्पनासमाधि चेति दुविधो पि समाधि चित्तविसुद्धि नाम। अभि० स० पृ० ९२४

160 नामरूपानं याथावदस्सनं दिट्ठिविसुद्धि नाम। विसु० १८.१ पृ० २४६

161 एतस्सेव पन नामरुपस्स पच्चपरिग्गहणेन तीसु अद्धासु कङ्खं वितरित्वा ठितं ञाणं कङ्खावितरणविसुद्धि नाम। विसु० १९.१, पृ० २६३

162 अयं मग्गो, अयं न मग्गो ति एवं मग्गं च अमग्गं च ञत्वा ठितं ञाणं पन मग्गामग्गञाणदस्सनविसुद्धि नाम। विसु० २०.१, पृ० २७४

163 अट्ठन्नं पन ञाणानं वसेन सिखाप्पता विपस्सना नवमं च सच्चानुलोमिकं ञाणं ति अयं पटिपदाञाणदस्सनविसुद्धि नाम। विसु०२१.१, पृ० २२५

७ ज्ञानदर्शनविशुद्धि . क्लेशमलों से विशुद्ध स्रोतआपत्तिमार्ग, सकृदागामी मार्ग, अनागामीमार्ग और अर्हत मार्ग इन चारों मार्गों का ज्ञान ज्ञानददर्शनविशुद्धि कहलाता है।[164]

तीन लक्षण - "लक्खीयति लक्खितब्बं अनेना ति लक्खणं" अर्थात जिसके द्वारा लक्षितव्य धर्मों को लक्षित किया जाता है उसे लक्षण कहते हैं। अर्थात धर्म संस्कृत हैं अथवा नहीं है इस बात की परीक्षा करने की कसौटी को लक्षण कहते हैं। लक्षण तीन प्रकार के जानना चाहिये। यथा . अनित्यता, दुखता एवं अनात्मता।[165] किसी एक धर्म को लेकर की यह धर्म नित्य है या अनित्य है? . इस प्रकार परीक्षा करने पर यदि यह ज्ञात हो की यह निश्चित रूप से नाशस्वभाव है तो "यह संस्कृत धर्म है। "ऐसा निश्चय करना चाहिए। इसी तरह परीक्षा करने पर धर्म दु:खस्वभाव या अनात्मस्वभाव ज्ञात हो तो यह धर्म एकांतत: संस्कृत है ऐसा निश्चय करना चाहिए। यदि धर्म नित्य एवं दु:खाभावस्वरूप होने से संस्कृत निश्चित नहीं होता है तो वह अवश्य **"असंस्कृत निर्वाण धर्म होगा"** ऐसा जानना चाहिए। इसी प्रकार दु:ख एवं दु:खलक्षण तथा अनात्म एवं अनात्म लक्षण के भेद और धर्म भी जानना चाहिए।[166]

तीन अनुपश्यनाएँ - त्रैभूमिक संस्कृत धर्मों के अनित्य लक्षण, दु:ख लक्षण, एवं अनात्म लक्षण अवभासित होने के लिए पुन:पुन: विपश्यना करने वाला ज्ञान ही अनुपश्यना कहलाता है -

१. अनित्यानुपश्यना

२. दुखानुपश्यना

३. आनात्मानुपश्यना

इस प्रकार ये तीन अनुश्यनाएँ समझनी चाहिए।[167]

---

164 सोतापत्तिमग्गो, सकदागामिमग्गो,अनागामिमग्गो,अरहत्तमग्गो-ति इमेसु पन चतूसु मग्गेसु ञाणं ञाणदस्सनविसुद्धि नाम। विसु० २२.१, पृ० ३७७

165 अनिच्चलक्खणं, दुक्खलक्खणं, अनत्तलक्खणञ्चेति तीणि लक्खणानि। अभि० स० पृ० ९१७

166 विभंग अट्ठशालिनी पृ० ४९-५२

167 अनिच्चानुपश्यना, दुक्खानुपश्यना, अनत्तानुपश्यना चेति तिस्सो अनुपस्सना। अभि० स० पृ० ९१९

दसविपश्यनाज्ञान - सम्मर्शनज्ञान, उदयव्ययज्ञान, भंगज्ञान, भयज्ञान, आदीनवज्ञान, निविदाज्ञान, मोक्तुकाम्यताज्ञान, प्रतिसंख्याज्ञान, संस्कारोपेक्षाज्ञान एवं अनुलोमज्ञान . इस प्रकार ये दस विपश्यना ज्ञान जानने चाहिए।[168]

तीन विमोक्ष - निर्वाण के पर्यायवाची रूप में विमोक्ष शब्द बौद्ध साहित्य में आया है। त्रिविध विमोक्ष जानने चाहिये हैं।[169]

१. शून्यताविमोक्ष।

२. अनिमित्तविमोक्ष।

३. अप्रणिहितविमोक्ष।

तीन विमोक्ष मुख - शुन्यतानुपश्यना, अनिमित्तानुपश्यना एवं अप्रणिहितानुपश्याना इस प्रकार ये तीन विमोक्षमुख जनना चाहिए।[170]

168सम्मसनञाणं, उदयब्बयञाणं, भङ्गञाणं, भयञाणं, आदीनवञाणं, निब्बिदाञाणं, मुञ्चितुकम्यताणं, पटिसङ्खाञाणं, सङ्खारुपेक्खाञाणं, अनुलोमञाणञ्चेति दस विपस्सनाञाणानि। अभि० स० पृ० ९२०

169 सूञ्ञतो विमोक्खो, अनिमित्तो विमोक्खो, अप्पणिहितो विमोक्खो चेति तयो विमोक्खा। अभि०स० पृ० ९२०

170 सूञ्ञतानुपस्सना, अनिमित्तानुपस्सना, अप्पणिहितानुपस्सना चेति तीणि विमोक्खमुखानि च वेदितव्यानि। अभि० स० पृ० ९२०

4.2 बौद्ध दर्शन में समाधि का स्वरूप

विसुद्धिमग्ग में कहा गया है कि साधक को धूताग्ग धारण करने से प्राप्त अल्पेक्षता आदि गुणों से परिशुद्ध तथा शील में प्रतिष्ठित भिक्षु को "सीले पतिट्ठाय.......चित्तं पय्म च भावयं" इस देशना.वचन में चित्त शीर्षक से निर्दिष्ट समाधि की भावना करनी चाहिए[171] समाधि की विस्तृत व्याख्या एवं भावना विधि प्रस्तुत करने के लिए यह प्रश्न किए जाते हैं[172] .

१ . को समाधि?

२ . केनट्ठेन समाधि ?

३ . कानस्स लक्खणरसपच्चुपट्ठानपदट्ठानानि ?

४ . कतिविधो समाधि ?

५ . को चस्स सकिंलेसो ?

६ . किं वोदानं ?

७ . कथं भावेतब्बो ?

८ . समाधि भावनाय को आनिसंसो ति ?

१ समाधि का स्वरूप . कुशल चित्त की एकाग्रता समाधि है।[173]

२ समाधि का अर्थ . समाधि शब्द समाधान के अर्थ में यहाँ प्रयुक्त हुआ है।, और एक आलंबन में चित्त . चैतसिकों का समान एवं सम्यक् रूप से आधान (टिकाना) करना ही समाधान का अर्थ है।[174]

३ समाधि के लक्षण आदि . इसका लक्षण है अविक्षेप अर्थात् चित्त का ध्येय विषय से ना हटना। तथा रस (कार्य) है विक्षेप का विध्वंस करना। प्रत्युपस्थान है कंपन रहित होना

---

171 इदानि यस्मा एवं धुतङ्ग परिहरणसम्पादितेहि अप्पिच्छतादीहि गुणेहि परियोदाते इमस्सिं "सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो चित्तं पञ्ञं च भावयं" ति वचनतो चित्तसीसेन निद्दिट्ठो समाधि भावतब्बो। विसु० ३.१ पृ० ११९

172 विसु० ३.१ पृ० ११९

173 कुसल चित्तेकग्गता समाधि। विसु० ३.२ पृ० ११९

174 केनट्ठेन समाधी ति? समाधानट्ठेन समाधि।किमिदं समाधानं नाम? एकारम्मणे चित्तचेतसिकानं समं सम्मा च आधानं, ठपनं ति वुत्तं हति। विसु० ३.३ पृ० १३०

अर्थात ध्येय विषय के प्रति चित्त . चैतसिकों के निर्वात स्थित दीपशिखावत्, कंपन रहित वर्तन के रूप में होना । और समाधि का पदस्थान (आसन्न कारण) सुख है।[175]

4.2.1 समाधि के भेद - प्रभेद

4. आचार्य बुद्धघोष ने समाधि के भेद इस प्रकार किए हैं[176].

1. एकविध समाधि - अविक्षेपलक्षण के अनुसार समाधि एकविध होती है।

2. द्विविध समाधि -

प्रथम द्विक् - छ:अनुस्मृति.स्थान, मरण.स्मृति, उपशमानुस्मृति, आहार में प्रतिकूल संज्ञा, चतुर् धातु व्यवस्थापन इनके द्वारा प्राप्त चित्त की एकाग्रता एवं अर्पणा समाधि के पूर्व की एकाग्रता **उपचार समाधि** है। "प्रथम ध्यान का प्रारम्भिक कृत्य प्रथम ध्यान का आसन्न कारण होने से प्रत्यय है". आदि वचनों के अनुसार जो परिकर्म के अनंतर आने वाली एकाग्रता है, वह **अर्पणा समाधि** है। इस प्रकार उपचार एवं अर्पणा के भेद से समाधि द्विविध है।

द्वितीय द्विक् - कामावचर, रूपावचर एवं अरुपावचर इन तीनों भूमियों में कुशल चित्त की एकाग्रता **लौकिक समाधि** है।, आर्यमार्गसम्प्रयुक्त एकाग्रता **लोकोत्तर समाधि** है।

तृतीय द्विक् - चार ध्यान मानने वाली विधि चतुष्क नय में दो ध्यानों में एवं पांच ध्यान मानने वाली विधि पच्चक नय में तीन में जो एकाग्रता होती है वह **प्रीति सहगत समाधि** है।, अवशिष्ट दो ध्यानों में प्राप्त एकाग्रता **प्रीति रहित समाधि** है।

---

[175] कानस्स लक्खणरसपच्चुट्ठानपदट्ठानानी ति? एत्थ पन अविक्खेपलक्खणो समाधि, विक्खेपविद्धंसनरसो, अविकम्पनपच्चुपट्ठानो। सुखिनो चित्तं समाधियती ति वचनतो पन सुखमस्स पदट्ठानं। विसु० ३.४ पृ० १३०, दीर्घ निकाय १-६५.

[176] कति विधो समाधि ति? अविक्खेपलक्खणेन ताव एकविधो। उपचार-अप्पनावसेन दुविधो, तथा लोकिय-लोकुत्तरवसेन सप्पीतिकनिप्पीतिकवसेन सुखसहगत - उपेक्खासहगतवसेन च। तिविधो हीन मज्झिमपणीतवसेन, तथा सवितक्कसविचारादिवसेन, पीतिसहगतादिवसेन, परित्तमहग्गतप्पमाणवसेन च। चतुब्बिधो दुक्खापटिपदादन्धभिञ्ञादिवसेन तथा परित्तपरित्तारम्मणादिवसेन, चतुझानङ्गवसेन, हानभागियादिवसेन, कामावचरादिवसेन, अधिपतिवसेन च। पञ्चविधो पञ्चकनये पञ्चझानङ्गवसेना ति। वहीं

चतुर्थ द्विक् - चतुष्क नय में तीन ध्यानों एवं पच्चक नय में चार ध्यानों में जो एकाग्रता होती है वह **सुख सहगत समाधि** है। अवशिष्ट ध्यानों में जो एकाग्रता होती है वह **उपेक्षा सहगत समाधि** है।

3. त्रिविध समाधि-

प्रथम त्रिक् - इसके अंतर्गत जो समाधि प्रति लब्ध्य मात्र है, परंतु अभ्यस्थ नहीं है, वह **हीन समाधि** है। जिसका अधिक अभ्यास नहीं किया गया है वह **मध्यम समाधि** है और जो पूर्ण अभ्यस्त कर ली गई है जिससे वश में कर लिया गया है वह **प्रणीत यानी उत्तम समाधि** है।

द्वितीय त्रिक् - उपचार समाधि के साथ प्रथम ध्यान की समाधि **सवितर्क सविचार समाधि** है। पंचक नय में, द्वितीय ध्यान की समाधि **अवितर्क.विचारमात्र समाधि** है। जो वितर्क मात्र में ही दोष देखकर एवं विचार में दोष ना देखकर वितर्क के प्रहाण मात्र की इच्छा करते हुए प्रथम ध्यान का अतिक्रमण करते हुए आगे बढ़ता है, वह अवितर्कविचारमात्र समाधि का लाभ प्राप्त करता है। चतुष्क नय में प्रथम दों ध्यानों एवं पच्चक नय में प्रथम तीन ध्यानों में प्राप्त एकाग्रता **अवितर्क.अविचार समाधि** है।

तृतीय त्रिक् - चतुष्क नय में प्रथम दो एवं पंचक नय में प्रथम तीन ध्यानों में जो एकाग्रता होती है वह **प्रीतिसहगत** समाधि है। उन्हीं तृतीय एवं चतुर्थ ध्यानों में एकाग्रता को **सुखसहगत समाधि** तथा शेष को **उपेक्षा सहगत** समाधि कहते है ।

चतुर्थ त्रिक् - उपचार भूमि में एकाग्रता **परित्त समाधि** है। रूपावचर, अरूपावचर के कुशल चित्त की एकाग्रता **महद्गत समाधि** है। आर्यमार्गसंप्रयुक्त एकाग्रता **अप्रमाण या अपरिमित समाधि** है।

4 चतुर्विध समाधि -

प्रथम चतुष्क् -

1. दु:ख प्रतिपद, दन्ध.अभिज्ञा (मन्द ज्ञान) समाधि है,
2. दु:ख प्रतिपद, क्षिप्र.अभिज्ञा (शीघ्रता से प्रवर्तित होने वाला अपरोक्ष ज्ञान)समाधि,
3. सुख प्रतिपद दन्ध.अभिज्ञा समाधि,
4. सुख प्रतिपद, क्षिप्र अभिज्ञा समाधि।

सचेतन प्रतिक्रिया से लेकर किसी ध्यान का उपचार उत्पन्न होने तक जो समा्धि की भावना है उसे प्रतिपद कहते हैं एवं उपचार से लेकर अर्पणा तक प्रवृत्त जो प्रज्ञा होती है वह अभिज्ञा कही जाती है।

द्वितीय चतुष्क् - में समाधि के चार भेद है.

1. परित्र परित्रालम्बन,
2. परित्र अप्रमाणालम्बन,
3. अप्रमाण परित्रालम्बन एवं,
4. अप्रमाण अप्रमाणालम्बन।

इन सब में जो समाधि स्वल्प मात्रा में भावित होने से एवं उच्च स्तरीय ध्यान का कारण बनने में असमर्थ है वह परित्त है। और जो समाधि आवर्धित आलंबन में प्रवृत्त होती हो, वह **परितालम्बन** है। जिसकी सम्यक् रूप से भावना की गई है अथवा जो उच्चस्तरीय ध्यान का प्रत्यय हो सकती है, वह **अपरिमित या अप्रमाण** है।

तृतीय चतुष्क - निवारणों का दमन कर दिए जाने के पश्चात प्राप्त होने वाले वितर्क विचार प्रीति सुख एवं एकाग्रता इन पांच अगों वाले प्रथम ध्यान की, तत्पश्चात वितर्क. विचार को छोड़कर तीन अंगों वाले द्वितीय ध्यान की, प्रीति रहित दो अंगो वाले तृतीय ध्यान की, तदनंतर सुखरहित उपेक्षावेदना एवं एकाग्रता इन दो अंगों वाले चतुर्थ ध्यान की, इस प्रकार इन चार ध्यान अंगों के अनुसार समाधि भी चतुर्विध है।

चतुर्थ चतुष्क -

1. हानभागीय समाधि
2. स्थितिभागीय समाधि
3. विशेषभागीय समाधि
4. निर्वेधभागीय समाधि

इनमें हानभागीय प्रत्यनीक् समुदाचार से, स्थितिभागीय. समाधि के अनुरूप स्मृति के ठहराव से, तथा विशेषभागीयता उच्चतर विशेषता की प्राप्ति, एवं निर्वेधभागीयता को निर्वेद के साथ संज्ञा एवं मानस्कार प्राप्त करने की योग्यता के रूप में जानना चाहिए।

5 पंचम चतुष्क् में-

1. कामावचर समाधि
2. रूपावचर समाधि

3. अरूपावचर समाधि

4. अपर्यापन्न समाधि

इनमें सभी प्रकार के उपचार एकाग्रता कामावचर समाधि है। इसी प्रकार अन्य तीन क्रमशः रूपावचर, अरूपावच एवं अपर्यापन्न के साथ संप्रयुक्त कुशल चित्त की एकाग्रता है।

षष्ठ चतुष्क् . जब भिक्षु इच्छा को प्रमुखता देकर चित्त की एकाग्रता प्राप्त करता है तो इसे छंद समाधि और जब वीर्य को प्रधान मानकर एकाग्रता प्राप्त करता है तो इसे वीर्य समाधि इसी प्रकार जब चित्त तथा मीमांसा (प्रज्ञा) को प्रमुखता देकर समाधि प्राप्त करता है तो क्रमश: चित्त समाधि एवं मीमांसा समाधि कहते हैं।

5 पंचविध - पांच ध्यानांगों के भेद से समाधि पंचविध जानना चाहिए।

5. समाधि का संक्लेस - इसका संक्लेस (चित्त मल) हानिभागीय धर्म हैं।[177]

6. समाधि का व्यवदान (शुद्धि) - इसका व्यवदान विशेषभागीय धर्म है[178] अर्थात् जब वितर्क रहित के साथ संज्ञा एवं मनस्कार का समुदाचार होता है तब प्रज्ञा विशेषभागिनी होती है।[179]

7. समाधि के साधना विधि - चूंकि समाधि लौकिक एवं लोकोत्तर के अनुसार द्विविध प्रकार की होती है इसलिए उनकी साधना विधि भी भिन्न.भिन्न है। इसमें आर्य मार्ग में प्रयुक्त समाधि, प्रज्ञा की भावना किये जाने पर उदित हो जाती है। किंतु लौकिक समाधि की भावना विधि में सर्वप्रथम शील का विशोधन कर, सुपरिशुद्ध शील में प्रतिष्ठित हो, फिर समाधि के बाधक 10 पलिबोधों[180] यथा.

1. आवास - जो भिक्षु मठ के बनवाने में व्यस्त रहता है, उसका चित्त समाधिमार्ग में नहीं जाता।

---

177 संक्लिलेसं ति हानिभागियो धम्मो। अभिधम्मपिटक २-४०६

178 वोदानं ति विसेसभागियो धम्मो। वहीं

179 अवितक्कसहगता सञ्ञामनसिकारा समुदाचरन्ति विसेसभागिनी पञ्ञा।ति इमिना नयेन विसेसभागियोधम्मो वेदितब्बो। अभिधम्मपिट्क २-३९२, विसु० ३.१० पृ० १३७

180 आवासो च कुलं लाभो गणो कम्मं च पच्चमं। अद्धानं ञाति आबाधो गन्थों इद्धीति तेदसा ति। विसुद्धिमग्ग ३.१२ पृ० १३८

2. कुल - अपने शिष्य के सम्बन्धियों के ऊपर विचार करने से मन इधर उधर व्यस्त रहता है। समाधि के लिए अवसर नही मिलता है।

3. लाभ - धन या वस्त्र का लोभ अनेक भिक्षुओं के चित्त को संसार का रसिक बना देता है।

4. गण - अनेक भिक्षुओं को सुत्त या अभिधम्म को अपने शिष्यों को पढाने से ही अवकाश नहीं मिलता है कि वे अपना समय समाधि में लगावें।

5. कम्म या कर्म - मकानों का बनवाना या मरम्मत कराना।

6. अद्धानं या मार्ग – कभी-कभी भिक्षु को उपसम्पदा देने या आवश्यक वस्तु लेने के लिए दूर तक जाना पड्ता है इसलिए रास्ता चलना समाधि के लिए बिघ्न है।

7. ज्ञाति (संबंधीजन) - सम्बन्धियों की बीमारी चित्त को योग से हटाती है।

8. आबाध - अपनी बीमारी भी बिघ्न है।

9. गन्ध - ग्रन्थ का अभ्यास समाधि में साधक हो बाधक नही ऐसा करना चाहिये।

10. इद्धि - समाधिमार्ग पर अग्रसर होने साधक को अनेक सिद्धियाँ स्वत: प्राप्त होती हैं। जो सावधान न रहने पर विघ्न रुप हो सकती है।,

इनके अतिरिक्त शारीरिक शुद्धि, पात्र, चीवर का साफ रखना भी आवश्यक है।

इन सबको नष्ट कर, कर्मस्थान बतलाने वाले कल्याण मित्र के पास जाकर 40 कर्मस्थानों [181] यथा.

दस कसिण - पृथ्वीकसिण, जलकसिण, तेजकसिण, वायुकसिण, नीलकसिण, पीतकसिण, लोहितकसिण, श्वेतकसिण, आलोककसिण, परिछिछन्नकसिण।,

दस अशुभ - उद्धुमातक, विनीलक, विपुब्बक, विछिछद्क, विक्खायितक, विक्खितक, हतविक्खितक, लोहितक, पुलुवक, अट्ठिक।

दस अनुस्मृतियाँ - बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, संग्घानुस्मृति, सीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति, देवतानुस्मृति, मरणानुस्मृति, का्यगतानुस्मृति, आनापानानुस्मृति, उपशमानुस्मृति।

चार ब्रह्माविहार . मैत्री करुणा मुदिता एवं उपेक्षा।

4 आरूप्य - आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचनन्त्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन।

---

[181] तात्रिमानि चत्तालीस कम्मट्ठानानि- दस कसिणा, दस असुभा, दस अनुस्सतियो,चत्तारो ब्रह्मविहारा, चत्तारो आरुप्पा, एका सञ्ञा, एकं ववत्थानं ति। वहीं

एक संज्ञा - आहार में प्रतिकूल संज्ञा।
एक व्यवस्थान - चतुर्व्यवास्थान।
में से अपने अनुरूप कर्म स्थान को ग्रहण कर, समाधि भावना के जो अनुरूप न हो ऐसे विहार को छोड़कर अनुरूप विहार में रहते हुए छोटे.छोटे समाधि के बाधक तत्वों को नाश कर एवं भावना करने के सभी विधानों का पालन करते हुए उपर्युक्त प्रकार से साधना करनी चाहिए।[182]

[182] ......सब्बं भावनाविधानं अपरिहापेन्तेन परिबोधो भावतब्वो ति अयमेत्थ सङ्खेपो। विसु० ३.११ पृ० १३८

पञ्चम् अध्याय

योगदर्शन तथा बौद्ध दर्शन में वर्णित ध्यान एवं समाधि की तुलनात्मक समीक्षा और समसामयिक प्रासंगिकता

5.1 तुलनात्मक विवेचन

1. सर्वप्रथम हम दोनों दर्शनों के ध्यान की साधना विधि को लेकर तुलना करें तो बौद्ध दर्शन में ध्यानयोग की कल्पना पातञ्जलयोग से नितान्त भिन्न एवं विलक्षण दिखती है। पातञ्जलयोग दर्शन के अनुसार जहाँ साधक को क्रियायोग एवं अष्टांगयोग इन दो का अभ्यास करना पड़ता है। जिनमें वह क्रियायोग का उपयोग क्लेशतनूकरण एवं समाधिभावनार्थ करता है। तथा अष्टांगयोग का अनुष्ठान समाधिलाभ के लिए करता है। इस समधि की सिद्धि के लिए वह पहले ध्यान की प्रक्रिया से गुजरता है। इस ध्यान की सिद्धि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, इन षट् चरणों के बाद होती है। अर्थात पहले साधक अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पांच यम का पालन करना सीखता है फिर शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान नाम के नियमों को अपनाते हुये आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा को करते हुए ध्यान की सिद्धि प्राप्त करता है। उसको ध्यानावस्था में ध्यान, ध्येय वस्तु, तथा स्वयं की अलग.अलग प्रतीती और समाधि में तीनों के ऐक्य की प्रतीति होती है । इस समाधिजन्य प्रज्ञा से पुरुष प्रकृति से विवेक प्राप्तकर अपने शुद्ध असंगरुप में अवस्थित होता है यही कैवल्यप्राप्ति योगदर्शन का लक्ष्य है।

वहीं बौद्धयोग से इसका पार्थक्य स्पष्ट है जहाँ ध्यानयोग का वर्णन पाँच भागों में किया गया है गुरु, शिष्य, योगन्तराय, समाधिविषय तथा योगभूमि। और सरल शब्दों मे कहें तो बौद्धदर्शन में ध्यान की सिद्धि पाँच चरणों में होती है। शिष्य **योग्यगुरु** खोजता है ध्यान सीखने के लिये। पुनः गुरू शिष्य को ध्यान की प्रेरणा देते हैं। तत्पश्चात् साधक

पलिबोध (साधना मार्ग की बाधाएँ आवासादि[183]) को दूर कर अपना ध्यान **कर्मस्थानों** में लगाता है फिर **भूमिदशक** की प्रक्रिया में ध्यान लगाता हुआ **ध्यान-चतुष्टय** में आता है। जहाँ -

प्रथम ध्यान में सापेक्ष और सविकल्प बुद्धि की स्थिति रहती है इसलिये यह ध्यान सवितर्क सविचार ध्यान कहलाता है।

द्वितीय ध्यान में प्रीति, सुख, और एकाग्रता की प्रधानता।

तृतीय ध्यान में बुद्धि अपने सहज विकल्प छोड़ देती है।

चतुर्थ ध्यान, ध्यान की तुर्यावस्था है जिसमें चित्त निर्विकल्पक हो जाता है।

2. अब यदि दोनों दर्शनों में समाधि सिद्धि के लिए प्रयुक्त साधना विधि की बात करें तो बौद्ध दर्शन में जहाँ लोकोत्तर समाधि की सिद्धि प्रज्ञा भावना के उदीयमान होने से मानी गई है तथा अलौकिक समाधि की सिद्धि के लिए शीलविशुद्धि, पलिबोधों का नाश करना, कर्मस्थान बताने वाले गुरु का आश्रय पाना, उसके बाद अनुरूप कर्मस्थान को अपनाना तथा समाधि बाधक कर्मस्थानों एवं तत्वों का नाश करना आवश्यक माना गया है। वहीं योगदर्शन में भी हम देखते हैं कि समाधि सिद्धि के लिए यम,नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, एवं ध्यान इन सप्तसाधनों का पालन करना आवश्यक बतलाया गया इस प्रकार दोनों दर्शनों के ध्यान एवं समाधि की साधना विधि को लेकर काफी सन्निकटता देखने को मिलती है।

3. बौद्ध दर्शन में जहाँ शमथ भावना और विपश्यना भावना साधक के ध्यानस्थ होने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। क्योंकि विपश्यना भावना के माध्यम से ही साधक पञ्चशील का पालन करते हुए अपने श्वास.प्रश्वास की गति पर ध्यान केन्द्रित करता है। वहीं हम इसकी तुलना योग दर्शन में प्राणायाम से कर सकते हैं। क्योकि यहाँ भी विपस्सना की भाँति ध्यानस्थ होने के लिए वही कार्य प्राणायाम के द्वारा किया जाता है। इस प्रकार दोनों दर्शनों में काफी साम्य होने पर भी भेद बिल्कुल स्पष्ट दिखता है।

4. दोनो दर्शनों के ध्यान के स्वरूप को लेकर बात करे तो हम देखते हैं कि बौद्ध दर्शन में ध्यान को प्रतिकूल धर्मों को जला देने वाला और अभेद रुप से समाधि स्वभाव मानकर कुशल चित्त की एकाग्रता कहा गया है। इस दर्शन में ध्यान का सबसे प्रचलित

---

183 आवासो च कुलं लाभो गणो कम्मं च पच्चमं। अद्धानं ञाति आबाधो गन्थों इद्धीति तेदसा ति।
विसुद्धिमग्ग० पृ० ६१.१

स्वरूप विपस्सना है जो पूरे विश्व में प्रचलित है।इसी प्रकार योगदर्शन में ध्यान को धारणा वाले विषय में ज्ञान की एकतानता के रूप में परिभाषित किया गया है योगदर्शन का यह ध्यानयोग पूरे विश्व में प्रचलित हो चुका है। यहाँ तक की **संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी २१ जून को विश्व योग दिवस** के रूप में मनानें को मान्यता प्रदान कर चुका है। इस प्रकार हम देख सकते है कि दोनो दर्शनों के ध्यान के स्वरूप को वैश्विक मान्यता मिली है।

5. आगे हम जब दोनों दर्शनों में वर्णित समाधि के स्वरूप को लेकर तुलना करते है तो देखते है की जैसे पातञ्जलयोग दर्शन में योग के लिये निम्न तीन मुख्य समाधियाँ बतायी गयी हैं।

1. योगाङ्गरूपिणी समाधि।
2. सम्प्रज्ञात समाधि।
3. असम्प्रज्ञात समाधि।

इनमें सम्प्रज्ञात समाधि चार प्रकार के ध्येयों का अनुगमन करने के कारण चार प्रकार की होती है।

1.वितर्कानुगत
2.विचारानुगत
3.आनन्दानुगत
4.अस्मितानुगत समाधि।

तथा जब चित्त विवेकाख्याति को निरुद्ध करता है तब संस्कार मात्र अवशिष्ट रह जाते हैं।[184] यही निर्बीज समाधि या असम्प्रज्ञात समाधि कही जाती है क्योंकि इस स्थिति में चित्त को किसी वस्तु (विवेकाख्याति) का भी ज्ञान नहीं रहता, सम्पूर्ण चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है[185] जबकि सम्प्रज्ञात समाधि में विवेकाख्याति रहती है। असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की होती है।[186] उपाय प्रत्यय और भव प्रत्यय। वैसे ही बौद्धदर्शन में वर्णित समाधि का विशद विवेचन समाधित्रय एवं भूमिदशक में समाधित्रय के रूप में मिलता है।

---

[184] विरामप्रत्ययाभाषपूर्वः संस्कारशेषोन्यः। यो०सू०, 2.18, पृ० 66.

[185] सर्ववृत्तिनिरोधत्त्वसम्प्रज्ञातः समाधि। यो० सू० भा०, 1.1, पृ० 01.

[186] स खल्वयं द्विध-उपायप्रत्योभवप्रत्ययश्च। यो०सू०, 2.19, पृ० 68

प्रथम शून्यता समाधि है इसमें साधक यह जान लेता है कि सब शून्य है और संसार स्वभाव शून्य है और तत्त्व प्रपञ्च शून्य है।

द्वितीय समाधि अनिमित्तिक में हम इस जगत के कार्य के मूल कारण को, इस प्रपञ्च के निमित्त को, संसार रूपी भासित होने वाले तत्त्व को ही एक मात्र सत्य समझते हैं।

तृतीय अप्रणिहित समाधि में हम प्रपञ्च के मिथ्या आवरण को हटाकर सत्य तत्त्व का साक्षत्कार करते हैं।

6. यदि दोनों दर्शनों के लक्ष्य या प्रयोजन को लेकर तुलना करें तो देखते हैं कि दोनों दर्शनों के परम लक्ष्य मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति में ध्यानयोग एवं समाधि को लक्ष्य प्राप्त की पूर्व अवस्था तथा परम साधन के रूप में स्वीकार किया गया है या कहें कि अष्टांगमार्ग एवं अष्टांगयोग को साधन के रूप में अपनाया गया है। लेकिन दोनों के अष्टांगिक मार्ग में भिन्नता है। यद्यपि यहाँ यह बात जरूर ध्यान रखने योग्य है कि जहाँ बौद्ध दर्शन में निर्वाण एवं परिनिर्वाण के भेद को स्वीकार किया गया है जिसके तहत निर्वाण कर्मत्यागपूर्वक ज्ञान की प्राप्ति है जिसमें ज्ञान प्राप्ति के बाद कर्मबन्धन से बिना बंधे बुद्ध लोक कल्याणार्थ कार्य करते हैं तथा परिनिर्वाण से आशय मृत्यु के बाद प्राप्त निर्वाण से है। वही योग दर्शन में समाधिस्थ साधक को कैवल्य की प्राप्ति से आशय पुरुष का बुद्धि सत्त्वादिरूप गुणों से संबंध न होने से है। इस प्रकार दोनों दर्शनों के लक्ष्यों या प्रयोजनों को बताने के बाद हम सारांशत: यह कह सकते हैं कि दोनो दर्शनों का तात्कालिक प्रयोजन समाधि की प्राप्ति और अंतिम प्रयोजन मोक्ष की प्राप्ति या दु:खनिवृत्ति है। तथा ध्यान एवं समाधि तक पहुँचने का अंतिम लक्ष्य मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति ही है।

7. इसके बाद हम आगे देखते है कि जिस प्रकार बौद्धों के त्रिरत्न शील, समाधि और प्रज्ञा को निर्वाण प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। ये त्रिरत्न, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग के अन्तर्गत आ जाते हैं। इनमें शील के द्वारा काय शुद्धि तथा समाधि के द्वारा चित्त शुद्धि पर विशेष बल दिया गया है तथा समाधि के अन्तर्गत ध्यान चतुष्टय की व्यवस्था बौद्धदर्शन में की गयी है। उसी प्रकार योगदर्शन में भी निर्वाण प्राप्ति के लिए त्रिविध साधनोंपाय बताये गये हैं -

१. अष्टाङ्गयोग।

२. क्रियायोग।

३. अभ्यास एवं वैराग्य।

8. बौद्ध ध्यान योग की चार अवस्थाओं के तुलना योग दर्शन के चेतना पूर्ण एकाग्रता के 4 स्थितियों (वितर्क, विचार, आनंद, अस्मिता) के साथ की जा सकती है। मज्झिमनिकाय में कहा गया है कि श्रद्धा, शक्ति, विचार, एकाग्रता एवं बुद्धि इन पांच गुणों के धारण करने से योग के लक्ष्य की प्राप्ति होती है। बौद्ध दर्शन के इस विचार से सहमति योग दर्शन पूर्णरूपेण करता है जैसा कि कहा भी गया है कि प्रमाण आदि पञ्चवृत्तियों के निरोध से योग सिद्धि होती है। सार रूप में हम कह सकते हैं कि बौद्ध ध्यान योग में जैसे उतरोत्तर वितर्क, विचार आदि वृत्तियों का समन होता जाता है और ध्यान प्रगाढ़ होता जाता है वैसे ही योग दर्शन में समाधि सिद्धि प्रक्रिया में वृत्तियों का उतरोत्तर निरोध होता जाता है जिससे समाधि प्रगाढ़ होती जाती हैं।

9. जहाँ बौद्ध दर्शन में लक्ष्य प्राप्ति हेतु नैतिक मार्गों की प्रधानता है। वहीं योग दर्शन में शारीरिक मनोवैज्ञानिक मार्गों को मोक्ष प्राप्ति के लिए पर्याप्त माना गया है परंतु दोनों इस बात से सहमत हैं कि ध्यान और समाधि के बाद ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

10. अब यदि हम दोनो दर्शनों के ध्यान एवं समाधि के भेद.प्रभेदों को लेकर तुलना करें तो बौद्ध दर्शन में जहाँ ध्यान के कई भेद.प्रभेद मिलते है वहीं पातञ्जलयोग दर्शन में ध्यान के तो भेद नही मिलते किन्तु हठयोग में ध्यान के अनेक भेद.प्रभेदों की अवश्य चर्चा मिलती है। इसी प्रकार बौद्ध दर्शन में जहां समाधि के एकविध, द्विविध, त्रिविध भेदादि किए गए हैं वहीं योग दर्शन में समाधि के मुख्य दो भेद संप्रज्ञात एवं असंप्रज्ञात किए गए हैं इनमें संप्रज्ञात समाधि की चार अवस्थाएं मानी गयी हैं जो बौद्ध दर्शन की समाधि की 4 अवस्थाओं के समान मालूम पड़ती हैं।

11. बौद्ध दर्शन के अन्तर्गत समाधि की प्रकिया में हम देखते हैं कि साधक पहले रूप धातु पर, कामधातु (वासना में जगत) का अतिक्रमण कर पाँच ध्यान अंगों के सहयोग से ध्यान केन्द्रित करता है फिर अरूपधातु पर ध्यान केन्द्रित कर चित्त शुद्धि करता है। इसके बाद फिर साधक चित्त में विद्यमान बीज रूप संस्कारों का नाश कर प्रज्ञा वस्तुतः निर्वाण प्राप्त करता है। इससे स्पष्टत: योगदर्शन के सम्प्रज्ञात समाधि कि तुलना बौद्ध दर्शन के रूप, अरूप ध्यानों से तथा असम्प्रज्ञात समाधि की तुलना अर्हत के निरोध समापत्ति से की जा सकती है।

12. मज्झिमनिकाय में कहा गया है कि चित्त की एकाग्रता ही समाधि है[187] अर्थात कुसल चित्त की वह एकाग्रता जहाँ अकुशल धर्मों या चित्तवृत्तियों का दमन हो जाता है। ऐसे ही आचार्य पतञ्जलि भी चित्तवृत्तियों जिन्हें हम अकुशल धर्म कह सकते है का निरोध को ही योग या समाधि माना है। इस प्रकार दोनो दर्शनों में समाधि के तात्पर्यार्थ को लेकर काफी समानता दिखायी देती है। किन्तु दोनों के कहने के ढ़ंग में भेद है।

13. दोनों दर्शनों में ध्यान के लिए विविध आसनों को बताया गया है जैसा कि हम देखते हैं कि बुद्ध की विविध ध्यानस्थ मूर्तियाँ विविध आसनों में मिलती है तथा वैसे ही योगदर्शन में आसन के विविध भेद आचार्य पतंजलि ने बताये हैं।

14. आगे हम देखते है ध्यानस्थ होने के पूर्व साधक के लिए बुद्ध ने आनापान सति का भी उपदेश दिया है योग दर्शन की वैराग्य एवं अनित्य अशुचि तथा दु:ख भावनाएं बौद्ध दर्शन उपदिष्ट विपश्यना की भांति हैं।

15. योगदर्शन की समाधि विषयक इस मान्यता कि समाधि सिद्धि से अलौकिक ज्ञान का लाभ मिलता है के समान बौद्ध दर्शन भी समाधि से चित्तैकाग्रता के बाद प्रज्ञा प्राप्ति की बात करता है।

16. दोनों दर्शनों में ध्यान एवं समाधि के बाधक तत्त्वों के विषय में भी हम समानता देख सकते हैं जैसे योगदर्शन में नवचित्तविक्षेपों वर्णन मिलता है उसी प्रकार बौद्ध दर्शन में पांच नीवारणों का उल्लेख मिलता है।

सारांशतः हम यह पाते है कि जहाँ योगी के लिये ध्यान और समाधि का असीम महत्त्व है वहीं बोधिसत्त्व पद प्राप्ति के लिये भी ध्यान एवं समाधि द्वारा हम अपनी चित्तवृत्तियों को निरुद्ध करने में समर्थ होते हैं। उसी तरह से बौद्धों के तुर्यावस्था नामक चतुर्थ ध्यान में भी उन्हें विशुद्ध ज्ञान के दर्शन होते हैं जिसे वे ब्रह्मविहार मानते हैं। साथ

---

[187] चित्तस्स एकाग्गता समाधि। म०नि० १.३०१

ही बौद्धों की जो तृतीय अप्रणिहित समाधि है एवं जो दशमधर्मभूमि मेधा है जिसमें बोधिसत्त्व स्वयं तत्त्व स्वरूप हो जाता है उस स्थिति को योग दर्शन में असम्प्रज्ञात समाधि के अन्तर्गत आने वाली धर्ममेघ समाधि से उपमित कर सकते है।

5.2 ध्यान एवं समाधि की समसामयिक प्रासंगिकता

आधुनिक उपभोक्तावादी जीवन शैली में ध्यान.समाधि को अपनाने की महती आवश्यकता है। इसमें ध्यान के द्वारा व्यक्ति अपनी शारीरिक एवं मानसिक उन्नति एवं समाधि के द्वारा आध्यात्मिक उन्नति की सफल प्राप्ति करता है। चूकिं समाधि की अवस्था में शारीरिक एवं मानसिक चैतन्य का भाव नही रहता इसलिए इस अवास्था में आध्यात्मिक चेतना का जागरण होता है। इन ध्यान एवं समाधि का सम्यक पालन तथा निरन्तर अभ्यास से मनुष्य आधुनिक समस्याओं से काफी हद तक निजात पा सकता है| जैसे –

5.2.1 शारीरिक स्तर पर मनुष्य को ध्यान एवं समाधि से लाभ - ध्यान करने से मानव शरीर को निम्न फल की प्राप्ति होती है -

1. हाई ब्लड़ प्रेशर सामान्य बना रहता है तथा शुगर पर नियत्रंण रहता है।
2. ध्यान करने से खून में लैक्टिक अम्ल [Lactic acid] की न्यूनता भी होती है क्योकि शरीर की मांशपेशियों में इसी अम्ल के संग्रह से शरीर में थकान उत्पन्न होती है।
3. प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
4. प्रसन्नता, मनोदशा, भावना के सुधार से संबंधित सेरोटोनिन [Serotonin] हार्मोन के उच्चस्राव से शरीर में हमेशा ताजगी बनी रहती है जिससे मनुष्य अपने.आप को हमेशा तरोताजा महसूस करता है।
5. ध्यान से शरीर के प्रत्येक अंग में नई सकारात्मक ऊर्जा शक्ति का संचार होता है।
6. तनाव से उत्पन्न शारीरिक व्याधियों जैसे निद्रा न आना, सिरदर्द, एवं अन्य शारीरिक पीड़ा जैसे जोड़ों के दर्द से छुटकारा मिलता है।

5.2.2 मानसिक स्तर पर मनुष्य को ध्यान एवं समाधि से लाभ -

1. ध्यान से मनःशांति एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।
2. आनंद एवं सृजनात्मकता में वृद्धि होती है।
3. मनोदशा एवं स्वास्थ्य बेहतर बना रहता है।
4. व्यक्ति की व्याकुलता एवं चिड़चिड़ापन में कमी आती है।
5. व्यक्ति के सहज व्यक्तित्त्व का विकास होता है।

5.2.3 आध्यात्मिक स्तर पर ध्यान एवं समाधि के लाभ

ध्यान एवं समाधि एक प्रायोगिक ज्ञान है कोई भी व्यक्ति चाहे वो जिस धर्म एवं विचारधारा का हो वह इन्हें अपना सकता है और निरन्तर अभ्यास से इनका फल भी प्राप्त कर सकता है। क्योंकि ध्यान एवं समाधि जितना शरीर एवं मस्तिष्क की एकता का साधन है उतना ही वे मानव एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य का प्रतीक भी है इन साधनों के माध्यम से ही मनुष्य जीव एवं प्रकृति से अपना अंतःसंबंध स्थापित कर अपनी आध्यात्मिक उन्नति को भी सफल बनाता है।

आधुनिक वैश्वीकरण के युग में मानव जीवन विविध जटिलताओं, शोर.शराबो, पर्यावरण प्रदूषण के कारण शारीरिक, मानसिक तनाव और थकावट तथा विभिन्न रोगों से ग्रसित तो है ही है साथ ही सामाजिक दुर्गुणों जैसे चोरी, हत्या, लूटमार, हिंसा का शिकार भी हो रहा है क्योंकि जीव जैसा सोचता है वह वैसा ही व्यवहार करता है इसलिए ध्यान एवं समाधि के द्वारा मनुष्य कि चित्त वृत्तियों का निरोध कर चित्त को कुशलीकृत कर उस चित्त में प्रेम , करुणा, दया , सहयोग जैसे सद्गुणों का बीज बोकर उसे राग, द्वेष आदि शारीरिक एवं मानसिक दुर्गुणों से काफी हद तक बचाया जा सकता है। क्योंकि चित्त की चंचलता के कारण ही जीव सांसारिक भौतिक विषयों से मोह, लोभ तथा अन्य जीवो की हिंसा करता है। इसलिए ध्यानस्थ एवं समाधिस्थ वैश्विक समुदाय के द्वरा ही एक पंथनिरपेक्ष, स्वास्थ्यवर्धक, शांतिमय, प्रेममय, कल्याणमय वैश्विक समाज का निर्माण हो सकेगा।

उपसंहार

इस प्रकार निष्कर्षत: हम यह कह सकते है कि ध्यान और समाधि एक ऐसे अभ्यास है जो शरीर एवं मन के बीच, जीव और परमात्मा के बीच , विचार एवं कार्य के बीच, संयम एवं पूर्णता के बीच, मनुष्य एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य बिठाते हैं, और स्वास्थ्य एवं जीव के कल्याण हेतु एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। यही नहीं ये हमारी प्रकृति एवं पर्यावरण विरोधी आधुनिक जीवन शैली में परिवर्तन कर तथा हम में पर्यावरण एवं प्रकृति के प्रति चेतना उत्पन्न करके जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग आदि वैश्विक खतरे से निपटने में काफी हद तक मदद भी कर सकते हैं। **आयुर्वेद** में भी कहा गया है कि स्वस्थ्य मनुष्य वह है जिसके दोष संतुलित हो, अग्नि संतुलित हो, सप्तधातुये संतुलित हो मल संतुलित हो, शारीरिक क्रियायें, मन, इन्द्रियाँ तथा आत्मा प्रसन्न हो।[188] सभी शारीरिक श्रम, सफलतायें, भाग्य, सब कुछ स्वास्थ्य पर ही अधारित है।[189] **विश्व स्वास्थ्य संगठन** ने भी स्वास्थ्य का लक्षण देते हुये कहा है कि "शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक, अध्यात्मिक और समाजिक दृष्टि से सही होने कि संतुलित सतह का नाम स्वास्थ्य है न कि बीमारी के न होने का।[190] इनमें शारीरिक क्रियाओं, मन, इन्द्रियों तथा आत्मा की प्रसन्नता के लिए, जीवन में शरीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक और समाजिक संतुलन बनाये रखने के लिए यदि वैश्विक समाज अपनी दिनचर्या में ध्यान समाधि को अपनाता है तो वैश्विक समाज इससे और अधिक लभान्वित हो सकता है। अपने संकल्प में, **यूएन** ने भी माना कि योग स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है तथा योगाभ्यास के लाभों के बारे में व्यापक प्रसार वैश्विक आबादी के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। योग जीवन के सभी क्षेत्रों में सामंजस्य लाता है और रोग निरोध, स्वास्थ्य संवर्धन, तथा मानव जीवन शैली से जुड़े अनेक विकारों के उपचार में अपनी भूमिकाओ के लिए जाना

---

188 समदोष: समाग्निश्च,समधातु मलक्रिया: ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना:स्वस्थ: इत्यभिदीयते॥ सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान १५.२०

189 सर्व प्राणि भृताम नित्यायु: युक्तिमपेक्षते।
दैवे पुरुषाकारे चस्थितम हि अस्य बला बलम। आयुर्वेद्

190 Helth is a state of physical, mental and social wellbeing in which disease and infirmity are absent. W.H.O.

जाता है।[191] इस सम्बन्ध में ध्यान एवं समाधि इस योग की प्राप्ति में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट The Global Strategy on Diet, physical Activity and Health **[DPAS]** के अनुसार विश्व की कुल मृत्यु में 60% मृत्यु केवल कैंसर, डायबिटीज, स्ट्रोक तथा हृदय संबंधी अन्य रोगों से होती है और इसके मुख्य दो कारण अस्वास्थ्यकर भोजन [Unhealthy diet] और शारीरिक असक्रियता [physical inactivity] हैं।

NCRB Report 2020 के अनुसार भारत में कुल मृत्यु का 1.4% मृत्यु आत्महत्या के तहत होती है जो 2018 में 1.3% था। इस 1.4% आत्महत्या में छात्र एवं किसानों की आत्महत्या का प्रतिशत 7.4% तथा गृहणियों [Housewife] का प्रतिशत 15.4% रहा है। इनमें तो कुल १/३ आत्महत्या युवा कर रहे हैं। इन आत्महत्याओं का प्रमुख कारण पारिवारिक समस्याएं, बेरोजगारी, किसानों को अपनी फसल का उचित दाम न मिल पाने ,पैदावार न होने, कर्जदार हो जाने से उत्पन्न तनाव/अवसाद रहा है। यदि इन छात्रों, किसानों, महिलाओं को उनकी संबंधित समस्याओं के निराकरण के साथ.साथ उन्हें मानसिक रूप से मजबूत बनाया जाए तो आत्महत्या के इन आंकड़ों को कम किया जा सकता है। और ध्यान योग के द्वारा उनके तनाव को काफी हद तक दूर किया जा सकता है जिससे बहुतों का जीवन बचाया जा सकता है। हाल ही में **IIT DELHI** नें अपने **"Yoga an effective strategy for selfmanagement of stress related problems and wellbeing during covid.19 lockdown: A cross.sectional study"**[192] नामक एक अध्ययन में पाया कि कोविड़ के दौरान योग करने वाले लोगों में, योग न करने वालों की अपेक्षा तनाव, चिन्ता या व्याकुलता, और अवसाद में काफी कमी देखने को मिली। जो इस बात का पूर्णत: प्रमाणित करता है कि यदि ध्यान एवं समाधि को जीवन में निरन्तर अपनाया जाय तो शारिरिक एवं मानसिक रोगों से काफी हद तक बचा जा सकता है। भारत सरकार ने इस संबंध में **"फिट इंडिया मूवमेंट"** जैसे कार्यक्रम को चलाकर तथा आयुष मंत्रालय का अलग से गठन कर इस संबन्ध में सराहनीय प्रयास किया है। जिसमें **आयुष मंत्रालय के**

[191] योग का मुख्यधारा में प्रवेश- अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस। आयुष मंत्रालय

[192] Indian express 19/02/2021

तहत आयुर्वेद, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध, होम्योपैथी को शामिल किया गया है। तथा **फिट इंडिया मूवमेंट** के तहत **"फिटनेस की डोज आधा घंटा रोज"** इस ध्येय वाक्य के साथ शारीरिक व्यायाम पर विशेष ध्यान दिया गया लेकिन शारीरिक श्रम करने में असमर्थ सुभेद्य वर्ग जैसे महिलाओं, बुजुर्ग ,दिव्यांग लोगों को शारीरिक व मानसिक दृष्टि से फिट रखने हेतु ध्यानयोग को दैनिक जीवन में अपनाना भी एक क्रांतिकारी कदम होगा।

इस प्रस्तुत शोध ग्रन्थ का प्रथम अध्याय एवं तृतीय अध्याय क्रमश: "योगदर्शन में वर्णित साधना पद्धति" तथा "बौद्ध दर्शन में वर्णित साधना पद्धति" रखा गया है क्योकि बिना साधना पद्ति को बताये हम ध्यान एवं समाधि विषय को सीधा नही जान सकते है। इन अध्यायों के निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि योगदर्शन में जैसे कैवल्य की प्राप्ति के लिए तीन प्रकार के अधिकारियों के लिए त्रिविध साधन बताये गये हैं जिनमें अधम हेतु अष्टांगयोग, मध्यम हेतु क्रियायोग और उत्तम या सर्वश्रेष्ठ अधिकारी हेतु अभ्यास एवं वैराग्य। वैसे ही बौद्ध दर्शन में त्रिरत्न के रूप में साधनोंपाय का उल्लेख है जिसके तहत शील का पालन करने वाले साधक को ही समाधि का अधिकारी माना गया है तथा गृहस्थ एवं उपासकों दोनों के लिए पंचशील का पालन अपरिहार्य बताया गया है।

दोनों ही दर्शनों की साधनापद्धति का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति कराना है। और इस लक्ष्य की प्राप्त कराने की प्रक्रिया का नाम ही तो साधना पद्ति है। योगदर्शन में इस लक्ष्य को कैवल्य तथा बौद्ध दर्शन में इसे निर्वाण कहा गया है। जीवनमुक्ति एवं विदेहमुक्ति के समान बौद्ध दर्शन में निर्वाण [इसी जीवन में प्राप्त] एवं परिनिर्वाण [जीवन के बाद प्राप्त] को स्वीकार किया गया है। यहाँ तक कि दोनों के न केवल उद्देश्य समान है अपितु उद्देश्य प्राप्ति हेतु अपनाये गये मार्गों अष्टांगयोग एवं अष्टांगमार्गादि में भी स्थूलभेद ही दिखता है सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर दोनों की साधनापद्धति मार्ग में पर्याप्त समानता दिखायी देती है। "योगदर्शन में ध्यान एवं समाधि का स्वरूप", "बौद्ध दर्शन में ध्यान एवं समाधि का स्वरुप" नामक इन दूसरे और चौथे अध्यायों में उल्लिखित बिषयवस्तु के अनुसार सार रूप में हम कह सकते है कि ध्यान किसी आलम्बन वस्तु में चित्त की एकाग्रता है। अन्तर केवल इतना है कि बौद्ध दर्शन में ध्यान को समाधि स्वभाव का माना गया जबकि योगदर्शन में इसे समाधि स्वभाव न मानकर समाधि की एक ऐसी पूर्वास्था मानी गयी जिसके विना समाधि लग ही नही सकती। किन्तु दोनों दर्शनों में इस बात को लेकर सहमति है कि

ध्यान एवं समाधि के लिए चित्तवृत्तियों का निरोध परमावश्यक है बौद्ध दर्शन में जहाँ 11 प्रकार की वितर्क, विचारादि चित्तवृत्तियों का उल्लेख मिलता है तथा वहीं योगदर्शन में प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति इन 5 चित्तवृत्तियों का उल्लेख मिलता है। ये चित्तवृत्तियाँ बौद्ध दर्शन में ध्यान के अन्तर्गत परिगणित है तथा योगदर्शन में ये समाधि के अन्तर्गत। साथ ही दोनों दर्शनों के समाधि विषयक विचारों के सन्दर्भ में हम निष्कर्ष रूप में पाते है कि ये दोनों ही दर्शन ऐसा मानते है कि ध्यान में जहां ध्याता, ध्यान, ध्येय की अलग.अलग प्रतीति होती है वहीं समाधि में इन तीनों में मात्र ध्येय शेष रहता है ध्याता और ध्यान ध्येयाकार हो जाते है और साधक अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति कर त्रिविध दुःखों से निवृत्ति पा लेता है।

पंचम अध्याय "योगदर्शन एवं बौद्ध दर्शन में वर्णित ध्यान और समाधि की तुलनात्मक समीक्षा और समसामयिक प्रासंगिकता" रखा गया है जिसके तहत दोनों दर्शनों के विविध सिद्धान्तों का ध्यान एवं समाधि से अन्तःसम्बन्ध स्थापित करते हुये उनके बीच विद्यमान समानताओं.विषमताओं का पता चलता है। साथ दोनों दर्शनों में वर्णित ध्यान एवं समाधि के मध्य विद्यमान साम्य एवं वैषम्य के वर्णन से उनकी आपसी सन्निकटता बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। कि ध्यान एवं समाधि का अभ्यास न केवल हमें शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से लाभ पहुचाता है अपितु हमारी अध्यात्मिक उन्नति का मार्ग भी प्रशस्त करता है तथा हमें जीव एवं ब्रह्म की एकता का भान कराकर प्रकृति एवं पर्यावरण को बनायें रखने के लिए प्रेरित भी करते हैं।

इस प्रकार ध्यान एवं समाधि क्रमशः तैलधारावदविच्छिन्नावस्था से लेकर सलिलै सैधवमिव तक कि अवास्था प्राप्त करने की एक ऐसी ज्ञानप्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य परमपिता परमेश्वर में तैलधारावद् एकाग्रचित्त होकर समुद्र में फेकें गये नमक के घुल जाने के समान लीन होकर संसारिक माया मोह से स्वयं छुटकारा पा लेता है तथा वेद की इस भारतीय वैश्विक दृष्टि वाला हो जाता है जिसमें कहा गया है कि .

सर्वे भवन्तु सुखिनः। सर्वे सन्तु निरामया॥

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चिद दुःख भाग्भवेत॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

प्राथमिक स्रोत

साक्षात् स्रोत -

- कश्यप, भिक्षु जगदीश, *दीघनिकाय,* नालन्दा,१९५८.
- कश्यप, भिक्षु जगदीश, *मज्झिमनिकाय,* नालन्दा, १९५४.
- कश्यप, भिक्षु जगदीश, *संयुत्तनिकाय,* नालन्दा, १९५४.
- कश्यप, भिक्षु जगदीश और त्रिपिटाकाचार्य, धर्मरक्षित, *संयुत्तनिकाय,प्रथम एवं द्वितीय भाग,*सम्यक प्रकाशन,नई दिल्ली,प्रथम संस्करण,२०१२.
- कश्यप, भिक्षु जगदीश,*अंगुत्तरनिकाय,* नालन्दा, १९६०
- सांकृत्यायन,महापंडित राहुल,*विनयपिटक,*सम्यक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, २००८.
- शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *विसुद्धिमग्गो,भाग.१,२,३,* हिन्दी अनुवाद सहितो, बौद्ध भारती प्रकाशन, वराणसी,२०१८.
- शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *अभिधर्मकोशम[भाष्य एवं व्याख्या सहित]*, वाराणसी,१९७१.
- प्रधान, प्रहलाद, *अभिधर्मकोशभाष्य,* पटना, १९६७.
- अनुरूद्ध, आचार्य, *अभिधम्मत्थसङ्गहो, द्वितीय भाग,* पालि ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९९२.
- कौसल्यायन,डॉ. भदन्त आनन्द, *धम्मपद,* बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, छठा संस्करण, 1993.
- गंगविष्णु, श्री कृष्णदास, *गोरक्षपद्धति,* मुम्बई, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना, 1867.

- धर्मरक्षित, *विसुद्धिमग्ग, प्रथम एवं द्वितीय भाग,* अनु० त्रिपिटकाचार्य, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008.
- श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र, *पातञ्जलयोगदर्शनम् (व्यासभाष्य.संवलितम्),* हिन्दी व्या०, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2011.
- मिश्रः, डॉ. श्रीनारायण, *पातञ्जलयोगदर्शनम् (वाचस्पतिमिश्रविरचित.तत्ववैशारदी.विज्ञानभिक्षुकृत.योगवार्त्तिकविभूषित.व्यास भाष्यसमेतम्),* भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1992.
- महाराज, स्वामी जी, *घेरण्ड संहिता (भाषानुवादसहित),* मध्यप्रदेश, श्री पीताम्बरा पीठ, *चतुर्थ सं.* 2003.
- राघव:, डा. राघवेन्द्रशर्मा, *घेरण्य संहिता[योगशास्त्रम],* चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २०१९.
- तिवारी, डा. श्यामलेश कुमार, *गोरक्षपद्धति: एवं गोरक्षयोगशास्त्रम,* चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी, २०१९.
- शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *सिद्धसिद्धान्तपद्धति:,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २०१९.
- गौतम,एस.एस. *धम्मपद, [पालि.संस्कृत.हिन्दी एवं अंग्रेजी में अनुदित],*सिद्धार्थ बुक्स,दिल्ली, २०१९
- शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *धम्मपदपालि, (हिन्दी.संस्कृत.अनुवाद सहित),* सं०, बौद्धभारती, वाराणसी, 2001.

असाक्षात् स्रोत -

- *बुद्धचरित,* सं० महन्त रामचन्द्र दास शास्त्री, वाराणसी, 1963.
- *मिलिन्दप्रश्न,* हिन्दी अनु० भिक्षु जगदीश काश्यप, सारनाथ, 1937.

द्वितीयक स्त्रोत .

- Bapat, p.v., *2500 years of buddhism*, publications division, ministry of information and broadcasting government of india.
- उपाध्याय, बलदेव, *बौद्ध दर्शन मीमांसा,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पञ्चम संस्करण, 1999.
- उपाध्याय, भरत सिंह, *बौद्ध दर्शन एवं अन्य भारतीय दर्शन*, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1954.
- उपाध्याय, बलदेव व रथ श्रीनिवास, *संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास (द्वादश. खण्ड),* उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1996.
- तिवारी, महेश, *शील समाधि प्रज्ञा,* काशी प्रसाद जायसवाल इन्स्टीट्यूट, पटना, 1998.
- शर्मा, राममूर्ति, *भारतीय दर्शन की चिन्तनधारा*, चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 2008.
- शर्मा, चन्द्रधर, *भारतीय दर्शन आलोचन और परिशीलन,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पुनर्मुद्रण, 2013.
- संघरक्षित, भंते महास्थविर, *बुद्ध का आर्य आष्टांगिक मार्ग*, अनुवादक डॉ. चन्दस्वरूप (धम्माचारी ज्ञानसागर), सम्यक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2015.
- कुमारी, डा. प्रीति, *बौद्ध धर्म के विविध आयाम*, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी , पटना,२०१६.
- सर्वपल्ली, डा. राधाकृष्णन, *गौतम बुद्ध . जीवन और दर्शन*, राजपाल प्रकाशन,दिल्ली, २०१७.

- मिश्र, डा. जगदीशचन्द्र, भारतीय दर्शन, चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला, वाराणसी, २०१६.
- वेदालंकार, डा. रघुवीर, पातंजलयोगदर्शन – एक अध्ययन, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००३.

कोश ग्रन्थ

- अमरसिंह, *अमर कोश*, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1961.
- आप्टे, वामन शिवराम, *संस्कृत.हिन्दी कोश*, नाग पब्लिशर्स, आठवां संस्करण, 2002.
- कुमार, शशिप्रभा, सन्तोष कुमार शुक्ल, रामनाथ झा, *दार्शनिक सम्प्रत्यय कोश*, , डी. के. प्रिण्टवर्ल्ड (प्रा.लि.), सुदर्शन पार्क (रमेश नगर), नई दिल्ली, 2014.
- कौशल्यायन, भदन्त आनन्द, *पालि.हिन्दी शब्दकोष*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं.,2008.
- टी० ड़ब्ल्यी० रायडेविड्स एण्ड विलियम स्टेड्स, *पालि.इग्लिश शब्दकोश*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २००३.
- *वाचस्पत्यम्* (छः भाग), चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान

  www.hindunet.com
  www.sanskrit.library.org
  www.sanskritworld.com
  www.sodhganga.com
  www.wikipedia.com
  www.endcat.inflibnet.ac.in
  www.who.int
  www.ayush.gov.in
  http://fitindia.gov.in
  http://ncrb.gov.in